श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

गौडीय वैष्णवाचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपाद विरचितः

श्रीव्रजरीतिचिन्तामणि

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज
व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676

श्रीलविश्वनाथचक्रवर्तीठक्कुरविरचितं

श्रीव्रजरीति-चिन्तामणि-काव्यम्



— श्री हरिदास शास्त्री

❀ विषय-सूची ❀



* श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् *

विज्ञप्ति:

"व्रजरीतिचिन्तामणिः"– श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्ति रचित सर्गत्रयात्मक निर्दोष काव्य है, श्रीव्रजमण्डल में कहाँपर परम करुण रसिक शेखर श्रीकृष्णचन्द्र की लीलास्थली विराजित है, उस की क्रमरीति का परिचय-सुललित पद विन्यास व शब्दार्थालङ्कार द्वारा इस काव्य में वर्णित है। रागानुगीय साधकगण इस पुस्तिका की सहायता से ही स्वाभीष्ट कुञ्ज के संस्थानादिका सुविशद परिचय प्राप्त कर सकेंगे। इसके आलोक से व्रजस्थली परिक्रमा का परिचय भी मिलता है।

व्रजरीति शब्द से व्रजलोक रीति को ही जानना होगा, भुवन और जन अर्थ में लोकशब्द का प्रयोग होता है, भुवन पक्ष मे गृह उद्यान वनादि का सुसंस्थान रूप रीतिका मनोरम वर्णन इसमें है, जन पक्ष में श्रीकृष्ण एवं उनके परिकरगण चिदानन्दमय होने पर भी उन सब की रीति लोकवत् चेष्टादि रूपा है। ये दोनों ही चिन्तामणि, अर्थात् अभीष्टार्थ फलप्रद है। यह व्रजरीति यदि कर्ण कुहर में अनासक्ति से भी प्रविष्ट होती है, तो मुक्त पुरुषगण लोकान्तरानुभव, ब्रह्मानुभव स्वरूपानुभव प्रमोद को भी परित्याग कर व्रजभूमि में श्रीकृष्ण लीला श्रवण करने की स्पृहा करते हैं, आसक्ति पूर्वक व्रजभूमि, तथा श्रीकृष्ण लीलाकथाश्रवण कारी, मुक्तेतर व्यक्ति की भी अवस्था वैसी हो जाती है, अतः, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णलीला, तथा व्रजभूमि अनुपम मनोमुग्धकर वस्तु है, प्रस्तुत ग्रन्थमें उक्त पदार्थसमूह का सर्वोत्तम आस्वादन सामग्री सन्निविष्ट है।

ग्रन्थकार की अनुभूति में परम मनोहर व्रजेन्द्रनन्दन एवं तदीय

धाम लीला परिकरादि वर्णनमय काव्य का ही सर्वोत्तम काव्यत्व है, काव्य प्रकाश के मत में तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती क्वापि। अर्थात् प्रसादादिगुण युक्त, स्थल विशेष में ईषदलङ्कार विशिष्ट दोष-रहित शब्दार्थ का नामही काव्य है। साहित्य दर्पण के मत में वाक्यं रसात्मकं काव्यम् अर्थात् रसात्मक वाक्य का नाम ही काव्य है, अन्य मत में "रीतिरात्मा काव्यस्य" अर्थात् गौड़ी प्रभृति रीति ही काव्य की आत्मा है। अलङ्कार कौस्तुभकार कहते हैं--"कवि वाङ् निर्मितिः काव्यम्" अर्थात् प्राक्तन संस्कार विशिष्ट व्यक्ति ही कवि नाम से अभिहित होता है, उस कवि की असाधारण चमत्कार कारिणी वाक्य रचना का नाम ही काव्य है, किन्तु ग्रन्थकार के मत में एक मात्र व्रजसम्बन्धीय काव्य ही परम काव्य है। कारण व्रजसम्बन्धि लीलादि वर्णनमय काव्य ही वास्तविक काव्य है, प्रश्न हो सकता है कि–अन्य वर्णनामय काव्य को वास्तविक काव्य, क्यों नहीं कहा जायेगा? इस का एक वाक्य से उत्तर है, नहीं। कारण रसमय वाक्यों का नाम ही काव्य है किन्तु प्राकृत नायक प्रभृति में जो रस परिदृष्ट होता है, परिणाम में उसकी विरसता एवं नश्वरता निबन्धन, उसको रसाभास ही कहा जाता है,वास्तविक रस शब्दसे कहा नहीं जा सकता है, सुतरां व्रज सम्बन्धविहीन काव्य को उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता है। और, भी, भगवन् सत्त्वा के द्वारा जिस प्रकार मायिकप्रपञ्च का अस्तित्व सूचित होता है, इस प्रकार चमत्कार रचना शक्ति सम्पन्न कवि का काव्य, काव्यता अर्थात् काव्यशक्ति की विद्यमानता से ही प्रसिद्ध होता है। किन्तु व्रज काव्य से ही उस काव्यका कवित्व तथा व्यवहार सूचित होता है, कारण, सर्वरस पूर्ण श्रीकृष्ण के सख्य दास्यादि सकल रस ही व्रजधाम में प्रकटित हैं। "रसेनोत्कृष्यते कृष्ण रूपमेषा रसस्थितिः" इस प्रमाणसे श्रीकृष्ण रूप, रसके द्वारा उत्कर्ष मण्डित होकर रस में ही अवस्थित होता है, अतएव काव्य का काव्य

अर्थात् कवित्व व्रज काव्यसे ही गृहीत होता है, इससे उसकी प्रतीति स्वाभाविक रूप से होती है।

अथवा काव्य का काव्य शब्द से श्रुति कथित "चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्" इत्यादि प्रमाण की भाँति काव्य का काव्य अर्थात् व्रज काव्य अप्राकृत काव्य है, प्रसिद्ध काव्य से, असाधारण चमत्कारकारी रचना से भी अतिशय चमत्काररूप है, सुतरां व्रज काव्य ही श्रेष्ठतम काव्य है।

प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण चैतन्य, तदीयगण श्रीकवि कर्णपूर गोस्वामी, श्रीरूपगोस्वामी प्रभृति एवं उनके अनुगत श्रीकृष्णदास कविराज प्रभृति वर्णित व्रजसाहित्य का अनुसरण परिपूर्ण रूप में है, कारण उन सबके वर्णित भावप्रेम ही व्रज भावोचित दास्य सख्यादि रति के उपयोगी हैं, इस से भिन्न साहित्य व्रजरस के लिए मनन योग्य नहीं है, रीति शब्द भी काव्य का ही प्रकाशक है, अलङ्कार कौस्तुभ में वर्णित है—काव्य पुरुष का शरीर शब्द, प्राण-अर्थ आत्मा-रस माधुर्यादि गुण, उपमा मुख अलङ्कार, एवं गौड़ि रीति प्रभृति अङ्गका सौष्ठव है, यह ही उत्तम काव्य पुरुष का स्वरूप है, किन्तु यदि उसमें श्रुति कटुतादि दोष की विद्यमानता होती है, तो उसको श्रेष्ठ काव्य नहीं कहा जा सकता है, किसी के मत में तो रीति ही काव्य की आत्मा है, सुतरां रीति ही काव्यत्व का उत्तम लक्षण है, यहाँ पर रीति शब्द, श्रीकृष्ण के धाम परिकर प्रभृति चिदानन्दमय होने पर भी उन सब की प्राकृतवत् प्रतीति व चेष्टादि का निर्देश करता है, सुतरां यह ही आलोच्य काव्य पुरुषके अङ्गादिका सौष्ठव है, अतएव यह निःसन्देह उत्तम काव्य है।

यह श्रीवृन्दावन एकमात्र निविड़ चिन्मय स्वरूप है, इस श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण परिकर रूप में जो लोक रहते हैं वे सब ही

श्रीकृष्ण की भाँति सच्चिदानन्दमय हैं,किन्तु आश्चर्य का विषय है कि-वे सब निविड़ चिन्मय स्वरूप होने पर भी प्राकृत लोकवत् प्रतीत होते हैं, इन सब की परस्पर चेष्टा भी लौकिकवत् प्रतीत होती है, इसलिए व्रजलीला, भक्त के हृदय में विस्मय एवं वैचित्रीका उदय कराती रहती है, आश्चर्य का विषय है कि-यह मधुपुरी श्रीवैकुण्ठ से भी गरीयसी एवं धन्या है कारण इस मधुपुरी में एकदिन मात्र निवास करने से ही श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति का उदय होता है। ब्रह्मसंहिता का कथन और भी आश्चर्यजनक है—

श्रियः कान्ताः कान्तः परम पुरुषः कल्पतरवो
द्रुमा भूमिश्चिन्तामणिगणमयी तोयममृतम् ।
कथागानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपि च ।।

अर्थात् श्रीवृन्दावन धाम में कान्ता व्रज सुन्दरीगण ही लक्ष्मी स्वरूपा हैं, श्रीकृष्ण ही कान्त हैं, वृक्ष सकल कल्पतरु हैं, भूमि सर्वाभीष्टप्रद चिन्तामणि गणमयी,जल अमृतमय यहाँकी सहज कथा है, ही गान है, गमन ही नाट्य है, वंशी ही प्रियसखी है, चन्द्रसूर्य्यादि ज्योति भी चिच्छक्तिमय है एवं भोजन सामग्री भी चिदानन्द है ।

हरिदासशास्त्री

॥ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ॥

व्रजरीतिचिन्तामणिः

प्रथमः सर्गः

॥

मङ्गलाचरणम्

यल्लोकरीतिश्रुति–पीतिमात्रा
लोकोत्तरात्मानुभवे प्रमोदम् ।
मुक्त्वैव मुक्ताः स्पृहयन्ति यस्यै
तां कृष्णलीला व्रजभूमिमीडे ॥१॥

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः । श्रीहरिदासेभ्यो नमः
प्रणम्य श्रीगुरून् भूयः श्रीकृष्णं तञ्च सव्रजम् ॥
श्रीचैतन्यन्तु सगणं लोकनाथं समाश्रये ॥

ग्रन्थारम्भे स्तुतिरूपमङ्गलमाचरति । यल्लोकेति । यस्याः कृष्णलीला व्रजभूमे र्लोकानां रीतिः लोकस्तु भुवने जने इत्यभिधानात् भुवनपक्षे रीति र्वक्ष्यमाणानां गृहोद्यानवनादीनां सुसंस्थानरूपा जन पक्षे श्रीकृष्णस्तत् परिकराणां चिदानन्दमयत्वेऽपि लोकवच्चेष्टादिरूपा च श्रुत्या श्रवणेन या पीतिः पानं, तन्मात्रादपि पानामात्रासक्ति पूर्वक श्रवणं किं पुनर्मननादिना अनुभवात् मुक्ताः किं पुनरन्यैः । लोकोत्त

शिष्टाचार परम्परा से ग्रन्थकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती ग्रन्थ सूचना में स्तुतिरूप मङ्गलाचरण करते हैं, मैं वह प्रसिद्धा श्रीकृष्ण लीलामयी व्रजभूमिकी (यहाँपर श्रीकृष्ण की लीला व्रज, अर्थात् लीला

श्रीकृष्णचैतन्यरस स्वरूपमद्वैतमानन्दमिहादिनित्यम् ।
लोकैरमृश्यं व्रजलोकवश्यं भजान्यवश्यं शुचितोऽप्यवश्यम् ॥

रात्मानुभवे ब्रह्मानुभवे किंपुनरन्यत्र प्रमोदं हर्षं मुक्त्वैव त्यक्त्वैव यस्यै कृष्ण लीला व्रजभूम्यै इत्यैव तुमर्थेचतुर्थी, यां कृष्णलीलाव्रजभूमिस्पृह यन्ति स्पृहां कुर्व्वन्ति । तां प्रसिद्धां कृष्णस्यलीला यत्र तां व्रजभूमिश्च कृष्ण लीला व्रजभूमिम् ईड़े (ईड़ स्तुतौधातुः) एतद् ग्रन्थास्वादनस्य फलमपि सर्वोत्तममिति ध्वनितम् ॥१॥

श्रीकृष्णचैतन्य एव रस स्वरूप स्तमवश्यं भजानि । अवश्यं पदं निश्ययार्थकम् । कीदृशम् ? अद्वैतं निरुपमम् । आनन्दं सुखरूपम् । आदि-प्रागभाव रहितम्, नित्यं ध्वंसरहितम्. लोकैरमृश्यं लोकविचार

समूह वर्त्तमान हैं)वन्दना करता हूँ, अथवा श्रीकृष्ण तदीय लीला एवं व्रजभूमि ये तीन की वन्दना करता हूँ । इस ब्रजभूमि की लोक रीति अतीव विचित्र है । लोक शब्द भुवन एवं जनसमूह का बोधक है । सुतरां भुवन पक्षमें व्रजस्य गृहोद्यान-वनादि की सुसंस्थान रूपा रीति एवं जन पक्षमें श्रीकृष्ण एवं तदीय परिकरगण की चेष्टादिरूपा रीति वक्रमका बोध होता है, यह चेष्टा चिदानन्दमय होने पर भी लौकिक रूपमें प्रतीत होती है, यह व्रजरीति मननादि द्वारा अनुभव करना तो दूसरी वात है, केवल श्रवण द्वारा पान करने पर ही अर्थात् आसक्ति पूर्वक श्रवणसे ही दूसरे की वात क्या, मुक्तव्यक्तिगण के लिए दुर्ल्लभ ब्रह्मानुभवजनित आनन्द को भी परित्यागकर वे कृष्णलीला व्रजभूमि प्राप्तिकी स्पृहा करते हैं । अतएव इस ग्रन्थास्वादन का फल सर्वोत्तम हैं, इससे सुस्पष्ट ध्वनित हुआ है ॥१॥

अनन्तर श्रीकृष्णचैतन्यदेव का मैं भजन करूँ, यहाँपर अवश्य पद निश्चयार्थक है । श्रीकृष्णचैतन्य देव किस प्रकार हैं ? अद्वैत अर्थात् निरुपम, आनन्दरूप, आदि अर्थात् प्रागभाव रहित, नित्य,

गम्यम् । व्रजवासि लोकानां भावादिभि राक्रान्तत्वात् श्रीकृष्णेन सहै क्याच्च व्रजलोकानां वश्यं वशीभूतम् । शुचिः पावकादपि अवश्यं भजानि । यस्य भजनान्नीचोऽपि पूतो भवतीति हेतोरपीति भावः यद्वा अन्यै रवश्यमनधीनमपि श्रीराधिका भावाक्रान्तत्वात् शुचितः शृङ्गार रसतोऽपि व्रजलोकाधीनम् । पक्षे अद्वैतमद्वैताचार्य्यम् । आदिस्थं नित्यमिति पद यस्य तमानन्दं नित्यानन्द मित्यर्थः । अन्यत् समानम् श्रीकृष्ण पक्षे श्रीकृष्ण एव चैतन्यरसस्वरूप स्तं भजानि । अद्वैतादि पदं पूर्ववद्विशेषणम् । तथाहि गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्यरूपं लावण्यसारमसमोद्ध्र्व मनन्यसिद्धमित्यादि श्रीभागवतोक्त्या निरू पमतयवाद्वैतम् । गोविन्दं सच्चिदानन्दविग्रहमिति गूढ़ं परं ब्रह्ममनुष्य लिङ्गमिति, रसो वस इत्यादि श्रूत्याचैतन्यानन्द रस नित्यादि रूपम् । यतोवाच निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसासह इत्यादिना लोकामृश्यं लोक विचारागम्यम् । गापीभिस्तोभितोऽनृत्यत् भगवान् बालवत् इत्यनन्तरं तद्वशो दारु यन्त्रवदित्यादिना व्रजलोकवश्यम् । अपवित्रः पवित्रो वा सर्वाबस्थां गतोऽपि वा यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचि

अर्थात् ध्वंसरहित, एवं लोक विचार का अगम्य एवं अनधीन होकर भी व्रजभावाविष्ट एवं श्रीकृष्ण के साथ अभिन्न हेतु व्रजलोकसे वशीभूत हैं । आप पावन के भी पावन हैं, उनका भजन करने पर अति नीच व्यक्ति भी पूत अर्थात् अपर का पवित्र कारक होता है, यह अपि शब्द का तात्पर्य्य है । शुचि शब्द शृङ्गार रसका बोधकहै , (शृङ्गारः शुचि उज्ज्वलः) अतएव आप दूसरे के अनधीन होकर भी श्रीराधा का भावाक्रान्त होने के कारण शृङ्गार रस 'मधुर रस' आस्वादन के निमित्त व्रजलोक के अधीन हैं । पक्षान्तर में-अद्वैत शब्द अद्वैत आचार्य्य का बोधक है, एवं नित्यपद श्रीमन्नित्यानन्दका बोधक है, अतएव रसस्वरूप श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु एवं तदीयअङ्ग श्रीनित्यानन्द एवं तदोय अवतार रूप श्रीअद्वैत प्रभुका मैं भजन करता हूँ ।

रिति। यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवति निर्म्मलः तस्य तीर्थपदः किम्वा दासानमवशिष्यते, इत्यादिना यस्य स्मरणादिना शुचिर्भवति ततः शुचितोऽप्यवश्यं भजानि। यद्वा न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः या माऽभजन् दुर्ज्जर गेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना इत्यादिना। अन्यैरवश्यमनधीनमपि शुचितः शृङ्गार तोऽपि व्रजलाकवश्यं व्रजलोकाधीनम् ॥२॥

श्रीकृष्ण पक्षमें अर्थ इस प्रकार है, श्रीकृष्ण, चैतन्य रसस्वरूप हैं, उनका भजन करता हूँ। अद्वैतादि पद उनका विशेषण हैं, श्रीकृष्ण अद्वैत-निरुपम हैं, गोपीगण कैसी अनिर्वचनीय तपस्या किए थे, वेसव श्रीकृष्ण के असमोर्ध एवं स्वाभाविक रूप व लावण्यसारको निरन्तर नयनगोचर करते हैं, सच्चिदानन्दविग्रह परं ब्रह्म रसोवैस चैतन्यरस स्वरूप श्रुति प्रमाण से परिस्फुट हुआ है, आप वाक्य मनके अगोचर हैं, दारुयन्त्र के समान श्रीकृष्ण गोपीयों के द्वारा वशीभूत हैं, इसलिए उनको व्रज लोक वश्य कहा जाता है, श्रीकृष्ण नाम श्रवणमात्र से ही अन्तर्वाह्य पवित्र व निर्म्मल होताहैं, इसलिए आप पवित्रसेभी पवित्रहैं।

शुचि शब्दसे उज्ज्वल मधुर रस का बोधहोता है। अतएव आप अन्यत्र अनधीन होनेपर भी व्रजस्थ मधुर रसके लिए व्रजजनके अधीन हैं, गोपीप्रेम की आभारी भी आप हैं, आपने कहा-हे सुन्दरीगण! तुम सवके संयोग व सम्मिलन काममय प्रतीयमान होनेपर भी वस्तुत निर्म्मल व प्रेममय है, सुतरां निर्दोष है, तुम सव कुलबधु होकर भी दुर्ज्जर गृहशृङ्खल अर्थात् गृह सम्बन्धि ऐहिक पारलौकिक सुखकर लोकमर्यादा का परिहार कर परमानुराग के साथ जिस प्रकार मेरा भजन किए हो, दूसरे के प्रति प्रेम प्रयुक्त हेतु मैं तादृश एकनिष्ठ होने में असमर्थ हूँ। सुतरां मैं तुम सबके असाधारण साधुकृत्यका प्रत्युपकार अनन्त कालमें भी करने में असमर्थ हूँ। अथच अनुरूप भजन की मेरी प्रतिज्ञाकी भी हानि होगई, वस्तुत मैं तुमसबके निकटऋणी ही रहा॥२

काव्यंकवेः काव्यतया प्रसिद्धं
काव्यस्य काव्यञ्च यतोऽपि काव्यम् ।

भागवत स्तथा तदियधामलीला परिकरादिवर्णनमयकाव्य स्यैवोत्तमकाव्यत्वं स्वमतमित्याह काव्यमिति । एतद्ग्रन्थ व्याख्याया मुपयोगित्वादादौ काव्यादिलक्षणं लिख्यते । काव्यप्रकाशकृन्मते तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती क्वापि । अस्यार्थः । दोष रहितौ शब्दार्थौ तत् काव्यम् । कीदृशौ । सगुणौ क्वापि अलङ्कृती ईषदलङ्कार विशिष्टौ । कस्य चिन्मते वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।अस्यार्थः । रसात्मक वाक्यं काव्यमिति । अन्यमते । रीतिरात्मा काव्यस्य । रीतिमत्त्वं काव्य त्वम् । रीतिर्गौड़ी प्रभृतयः । अलंकारकौस्तुभकृन्मते कविवाङ् निर्म्मितिः काव्यम् । असाधारण चमत्कारकारिणी रचना हि निर्म्मितिः । अस्य मते कवे र्लक्षणम् । यथा सवीजो हि कविर्ज्ञेयः । वीजं प्राक्तनसंस्कार विशेषम् । प्रकृतमनुसरामः । व्रजैक काव्यं,मम परं काव्य

श्रीभगवान एव तदीयधाम-लीला-परिकरादि-वर्णनमय काव्यका काव्यत्वही सर्वोत्तम है, यह विषय इस श्लोक में विवृत हुआ है । प्रथमतः बोध की सुगमता के लिए काव्य लक्षण प्रदर्शित हो रहा है, काव्य प्रकाश के मतमें "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती क्वापि" अर्थात् प्रसादादिगुण युक्त एवं कहींपर ईषदलङ्कार विशिष्ट दोषरहित शब्दार्थ का नाम ही काव्य है, अन्यमत में "रीतिरात्मा काव्यस्य" अर्थात् गौड़ी प्रभृति रीति ही काव्य की आत्मा है, अलङ्कार कौस्तुभ कार कहते हैं "कविवाङ् निर्मितिः काव्यम्" अर्थात् प्राक्तन संस्कार विशिष्ट व्यक्तिही कविनाम से अभिहित होता है, उक्त कवि की असाधारण चमत्कार कारिणी वाक्य रचना का नाम ही काव्य है ।

जोकुछभी हो सम्प्रति मूलविषयका अनुसरण करतेहैं, एकमात्र व्रज सम्बधीय काव्य ही मेरा परम काव्य हो । क्योंकि व्रज सम्बन्धि

तदेव काव्यं मम काव्यकाव्यं

व्रजैक काव्यं परमस्तु काव्यम् ॥३॥

मस्तु। कुतः तदेव काव्यमिति। तदेव व्रजसम्बन्धिलीलादिवर्णनमयं काव्यमेव काव्यं, नतत्त्वन्यत्। रसमयवाक्यानामेव काव्यत्वात् प्राकृत नायकादौ रसाभासो नतु रसः परिणामविरसत्वात् नश्वरत्वाच्च। काव्यमिति। यथा मायिक प्रपञ्चस्य भगवत् सत्तयास्तित्वव्यवहारः तथैव कवेः काव्यकरणे शक्तिमतः काव्यतया प्रसिद्धम्। यत् काव्यं तत् यतो व्रजकाव्यादस्ति, अस्ति व्यवहारः। सर्वरस परिपूर्णस्य श्रीकृष्णस्य सख्य दास्यादि सर्वरसस्य व्रजे एवं प्रकटनात्। सर्वरसमयत्वं श्रीकृष्णस्य यथा। मल्लानामशनिरित्यादि दशमे। रसेनोत्कृष्यते कृष्ण रूपमेषारसस्थितिरित्यादि वा पूर्ववत् काव्यस्य काव्यश्च यतो

लीलादि वर्णनमय काव्यही प्रकृत काव्य, है तब क्या अन्य वर्णनमय काव्यका प्रकृत काव्य कहा नहीं जा सकता है? इसका उत्तर इसप्रकार है, रसमय वाक्यका ही काव्यत्व है। किन्तु प्राकृत नायिकादि में जो रस परिदृष्ट होताहै, उसका परिणाम विरसता एवं नश्वरता निबन्धन उसको रसाभास कहा जाता है, प्रकृतरस कहा नहीं जा सकता है। सुतरां व्रज सम्बन्ध विहीन काव्यको उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता है,यह ही तात्पर्य्य है,और भी भगवान्‌की सत्ताके द्वारा ही जिस प्रकार मायिक प्रपञ्च का अस्तित्व सूचित होता है, उस प्रकार चमत्कार रचना शक्ति सम्पन्न कवि का काव्य, काव्यता अर्थात् काव्यका भाव की विद्यमानता से ही प्रसिद्धि को प्राप्त करता है, किन्तु व्रज काव्यसे ही उक्त काव्य का अस्तित्व व्यवहार सूचित होता है, कारण, सर्वरस पूर्ण श्रीकृष्ण के सख्य दास्यादि सकल रस ही व्रजधाम में प्रकटित हैं, श्रीकृष्ण जो रसमय हैं वह "रसेनोत्कृष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिः" "मल्लानामशनि" वाक्य से प्रतिपादित हुआ है। अर्थात् श्रीकृष्ण रूप

चैतन्यरूपोदितरीतिमेकामेकान्तमभ्यस्तुमहं समीहे ।
तत्तत्तदीयानुगतोक्तभावो भावोचितोऽध्येय इतो न काव्यम् ॥४

व्रजकाव्यादस्ति । अथवा श्रुतौ यथा चक्षुषश्चक्षुरुतश्रोत्रस्य श्रोत्रमिति यत् काव्यस्य काव्यमिति काव्यकाव्यमिति । काव्यादपि काव्यम् तथाच असाधारण चमत्कारकारि रचनादपि अतिशय चमत्कार रूपमित्यर्थः । ममास्त्वित्यनेन व्रजकाव्यमेव मम वर्णनीयमस्त्विति प्रार्थना ॥३॥

चैतन्य रूपेणोदिता, यद्वा चैतन्येन रूपगोस्वामिना चोदिता या रीति स्तामेकां नत्वन्यामभ्यस्तुमभ्यासं कर्त्तु मेकान्तं यथात्तथाहमीहे इच्छामि । तत्तत्तदीयेति तत्तस्मात तत् तेन श्रीचैतन्येन तदीयाः श्री-कविकर्णपूर गोस्वामि श्रीरूपगोस्वामि प्रभृतयस्तै स्तथा एतैषामनुगताः

रस द्वारा उत्कर्ष प्राप्तकर रस में ही अवस्थान करता है । अतएव काव्य का काव्य, अर्थात् कवित्व व्रज काव्य से ही गृहीत हुआ है, वह स्वाभाविक रूपसे प्रतीत हो रहा है । अथवा काव्य का काव्य इस वाक्यमें श्रुति कथित 'चक्षुष श्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्र' इत्यादि प्रमाणवत् वह काव्य का काव्य अर्थात् अप्राकृत काव्य है, इस प्रकार अर्थ भी परिस्फुट हुआ है । इसलिये वह "काव्य-काव्य" अर्थात् काव्य की अपेक्षा से भी असाधारण चमत्कारकारि-रचना की अपेक्षा से भी अतिशय चमत्कार रूप है । सुतरां पर अर्थात् श्रेष्ठतम काव्य है । अतएव उक्त प्रकार व्रज काव्य ही मेरा वर्णनीय हो, यह ही मेरी प्रार्थना है ॥३॥

श्रीचैतन्य रूपमें उदित, अथवा श्रीकृष्ण चैतन्य एवं श्रीरूप गोस्वामी द्वारा प्रवर्त्तित रीति का ही मैं अभ्यास करने के लिए एकान्त इच्छुक हूँ (अपर किसी रीति नहीं) अतएव श्रीकृष्ण चैतन्य, तदीयगण श्रीकवि कर्णपूर गोस्वामी एवं श्रीरूप गोस्वामी प्रभृति एवं

श्रीकविराज गोस्वामि प्रभृतयस्तैरुक्तो यो भावः प्रेमा सोऽपि भावोचितः सख्यदासादि रत्युपयोगी यो भवति स एव ध्येयः। ध्यानाभावात् कुतो वर्णनम्। इतः उक्त प्रकारात् काव्यं न वर्णनीयमितिशेषः। यद्वा इतः काव्यं न काव्याभावात् न वर्णनीयमिति भावः। इतो न काव्य मित्यनेन रीति शब्दस्य काव्ये एव तात्पर्य्यम्। यथा अलङ्कार कौस्तुभे। काव्यस्य शरीरादि स्वरूपमाह, शरीर शब्दार्थो ध्वनि रसव आत्मा किल रसो गुणा माधुर्य्याद्या उपमेति मुखोऽलङ्कृतिगणः। सुसंस्थानं रीतिः सकलः परमः काव्यपुरुषो यदस्मिन् दोषः स्यात् श्रवण कटुतादि नं परः। 'सुसंस्थानं रीतिः' इत्यस्य व्याख्या। गौड़ी प्रभृतयो रीतिरेव सुसंस्थानम् अङ्गादि सौष्ठवमिति। कस्यचिन्मते रीतिरेव काव्यस्यात्मा तन्मते रीतिरलङ्कारकाव्यत्वमिति काव्यलक्षणम्।

इनके अनुगत श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी आदि कथित जो भाव अथवा प्रेम, वह रीति के उपयोगी एवं ध्येय अर्थात् ध्यान का विषयी भूत है। ध्यान के अभाव से कैसे वर्णन हो सकता है? इसलिए यह काव्य नहीं है, अर्थात् ध्यानाभाव के कारण कवित्व का अभाव से यह काव्य रूपमें वर्णनीय नहीं हो सकता है। ग्रन्थकार की यह दैन्योक्ति है, अन्यथा जब रीति शब्द का तात्पर्य्य उत्तम काव्य है, तब यह परम काव्य क्या नहीं है? अलङ्कार कौस्तुभ में उक्त है, काव्य पुरुष का शरीर शब्द, प्राण अर्थ, आत्मा रस, माधुर्य्यादि-गुण-उपमा मुख-अलङ्कार एवं गौड़ी प्रभृति रीति ही अङ्गसौष्ठव है, यह ही उत्तम काव्य पुरुषका स्वरूप है, किन्तु इसमें यदि श्रुति कटुतादि दोष विद्यमान होता है, तब उसको श्रेष्ठ काव्य कहा नहीं जा सकता है।

किसी का कथन है—रीति ही काव्य की आत्मा है, सुतरां रीति ही काव्यत्व का उत्तम लक्षण है, यहाँ पर रीति शब्द श्रीकृष्ण के धाम परिकर प्रभृति का चिदानन्दमयत्व होने पर भी प्राकृतवत् प्रतीति एवं चेष्टादि का निर्देश करता है। सुतरां यह ही आलोच्य

वैकुण्ठ कोट्यश्चित आसतेऽलं
ब्रह्माण्ड कोट्योऽपि चितोऽचितोऽपि ।
सर्वत्र वृन्दावनमेतदेव
यथा स कृष्णः पुलिनाशनादौ ॥५॥

अत्र रीतिस्तु श्रीकृष्णस्येव धामपरिकरादीनां चिदानन्दसत्त्वेऽपि प्राकृतवत्प्रतीति चेष्टादिः। एतदेव काव्यपुरुषस्याङ्गादेः सौष्ठवमिति॥४

वैकुण्ठ कोटचः चितः चित् स्वरूपा अलमतिशयेन आसते सन्ति चित् चित् स्वरूपाः अप्राकृताः प्राकृताश्च ब्रह्माण्ड कोट्यः सन्ति। सर्वत्र चिद् चिद् ब्रह्माण्डे एतदेव वृन्दावनम्। अत्र प्रमाणं आदि वराह तन्त्रे पृथिव्युवाच। अनन्त कोटिब्रह्माण्डे तद्बाह्याभ्यन्तर-संस्थितम्। विष्णुस्थानं परं तेषां प्रधानं प्रियमुत्तमम्। तत् परं नास्ति कृष्णस्य प्रियस्थानं महत्तमम्। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्वमहाप्रभोः। इति प्रश्नानन्तरं श्रीवराह देवेन श्रीवृन्दावन-मुक्तम्॥ तथाच। महा प्रलये जड़ात्मकसर्वब्रह्माण्डनाशे सति

काव्य पुरुष के अङ्ग आदि का सौष्टव है, अतएव यह ही निःसन्देहः उत्तम काव्य है ॥४॥

कोटि कोटि चिन्मय श्रीवैकुण्ठधाम विद्यमान हैं, एवं अप्राकृत व प्राकृत भेद से कोटि कोटि ब्रह्माण्ड भी विद्यमान हैं, वह चिन्मय श्रीवैकुण्ठ में अथवा ब्रह्माण्ड के सर्वत्र ही इस प्रकार श्रीवृन्दावन विराजित है। इस विषयमें वराह तन्त्र का प्रमाण निम्नोक्त रूप है–

अनन्त कोटी ब्रह्माण्ड के बाहर एवं अभ्यन्तर में जो विष्णु स्थान अवस्थित है वह ही सबके पर, प्रधान व उत्तम है, उसकी अपेक्षा श्रीकृष्णका महत्तम प्रियस्थान और नहीं है, हे महाप्रभो ! मैं उसके विषय में सुनाना चाहती हूं। कृपया वर्णन करें।

धरित्री देवी की इस उक्ति को सुनकर श्रीवराहदेव ने उनके

**इदं घनीभूत चिदेक रूपं वृन्दावनं यत्र वसन्ति सर्वे ।
श्रीकृष्णलीला परिवार रूपा यथैव कृष्णः स तथैव तेऽपि ।।६।।**

चिदात्मक ब्रह्माण्डे श्रीवृन्दावनस्य स्थितिरिति सात्त्वतसिद्धान्तः। श्रीवृन्दावनस्य अचिन्त्य शक्त्या सर्वं ब्रह्माण्डस्थितानामस्मिन्नेव ब्रह्माण्डे श्रीवृन्दावनमस्तीत्याकारक प्रतीतावनुरूप दृष्टान्तमाह यथेति । एक एव कृष्णः पुलिन भोजने सखीनां यथा आस बभूव । सखीनां प्रत्येकं प्रतीति र्ममाभिमुख एव श्रीकृष्ण इति, आदि शब्देन रासे व्रज सुन्दरीणां प्रति गृहे महिषीणां ममैव निकटे श्रीकृष्णोऽस्तीति यथा प्रतीतिः तथा अत्रापि ।।५।।

इदं वृन्दावनं घनीभूतं निविड़ं यच्चित् चैतन्यं तदेकरूपं

निकट श्रीवृन्दावन की कथा को ही विवृत किये थे । महा-प्रलय में जड़ात्मक निखिल ब्रह्माण्ड का विनाश होने पर प्रकट श्रीवृन्दावन तिरोहित होने पर भी चिदात्मके ब्रह्माण्ड में उसकी स्थिति नित्य है, यह ही सात्वत सिद्धान्त है,अचिन्त्य शक्तिका प्रभावसे ही श्रीवृन्दावन का अवस्थान सकल ब्रह्माण्ड में है, इसलिए परिदृश्यमान ब्रह्माण्ड में भी श्रीवृन्दावन विराजित है, एक ही श्रीवृन्दावन का निखिल ब्रह्माण्ड में अवस्थान कैसे सम्भव है ? सदृष्टान्त इसका उत्तर करते हैं–"पुलिन भोजन आदि में श्रीकृष्ण जैसे प्रतीत हुए थे, उसी प्रकार जानना होगा । सखागण विभिन्न पङ्क्ति में विभिन्न दिक् में भोजनार्थ उपविष्ट होने पर भी एक ही श्रीकृष्ण उन सबके प्रत्यक्षी-भूत हुए थे,एवं प्रत्येक की प्रतीति हुई थी कि"श्रीकृष्ण मेरे अभिमुख में ही हैं ।" आदि शब्द से और भी परिव्यक्त हुआ है कि रासलीला में श्रीव्रजसुन्दरीगण की एवं प्रति गृह में महिषीगण की प्रतीति हुई थी कि "श्रीकृष्ण मेरे निकट में ही हैं" अतएव प्रत्येक ब्रह्माण्ड में श्रीवृन्दावन की विराजमानता इस प्रकार अचिन्त्य शक्ति प्रभाव से ही प्रतीयमान होती है ।।५।।

सर्वे घनीभूतचिदेक रूपा स्तथाप्यहो प्राकृतवत् प्रतीता।
परस्परं चेष्टितमप्यमीषां व्रजैकलीलेति चमत्करोति ॥७॥

तन्मयम्। यत्र वृन्दावने ये सर्वे वसन्ति ते श्रीकृष्णलीलायां परिवार रूपाः, यथा स कृष्णः सच्चिदानन्दरूपस्तथैव ते श्रीकृष्णलीला-परिकराः श्रीनन्दादयः सच्चिदानन्दरूपाः ॥६॥

सर्वे श्रीकृष्ण परिकराः घनीभूतचिदेकरूपा भूत्वापि अहो ! आश्चर्य्यम् ? प्राकृतलोकवत् प्रतीताः। प्राकृतवत् ज्ञान विषयो भवन्ति अमीषां परिकराणां परस्परचेष्टितमपि प्राकृतवत्। इति हेतो ब्रजैक लीला चमत्करोति। श्रीवृन्दावनश्रीकृष्णस्तत् परिकरादीनां सच्चिदानन्दमयत्वं क्वापि शास्त्रे स्फुटम्। क्वापि नित्यत्वादेव चिद्घनरूपत्वं सच्चिदानन्दवस्तूनामेव नित्यत्वं नतु मायिकानाम्। तथाहि यामले। कृष्णोऽन्यो यदुसंभूत यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः।

वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति।
द्विभूजः सर्वदा सोऽत्र न कदाचिच्चतुर्भुजः॥

यह श्रीवृन्दावन एकमात्र निविड़ चिन्मय स्वरूप है। इस श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण के परिकर रूपमें जो सब-जन वास करते हैं, वे सब श्रीनन्द यशोदा आदि एवं श्रीकृष्णके समान सच्चिदानन्द रूप हैं ॥६॥

श्रीकृष्ण परिकर सब ही निविड़ चिन्मय स्वरूप होने पर भी आश्चर्य्य का विषय है कि वे सब ही प्राकृत लोक की भाँति प्रतीत होते हैं एवं इन सबके परस्पर की चेष्टाका भी लौकिकवत् प्राकृतबोध होता हैं।

इसलिए व्रजलीला, भक्त के हृदय में विस्मय व वैचित्र्य को उत्पन्न करती है। श्रीवृन्दावन, श्रीकृष्ण व तदीय परिकरादिका सच्चिदानन्दमयत्व वर्णन शास्त्र में कहीं तो सुस्पष्ठ रूपमें है और

गोप्यैकयायुतस्तत्र परिक्रीड़ति नित्यदा। पातालखण्डे अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी दिनमेकं निवासेन हरौभक्ति प्रजायते। सनत्कुमार संहितायां—

यथा प्रकट लीलायां पुराणेषु प्रकीर्त्तिताः।
तथा ते नित्य लीलासु सन्ति वृन्दावने भुवि॥
दासाः सखायः पितरो प्रेयस्योऽस्प हरेरिह।
सर्वे नित्या मुनि श्रेष्ठ तत्तुल्यगुणशालिनः॥
पाद्मे नित्यां मे मथुरां विद्धि वृन्दावनं तथा।

अभिधया यथा-ब्रह्मसंहितायाम्—

श्रियः कान्ता कान्तः परम पुरुषः कल्पतरवो॥
द्रुमाश्चिन्तामणिगणमयो तोयममृतम्।
कथागानं नाट्यं गमनमपि वंशीप्रियसखी॥
चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तदास्वाद्यमपिच।
ज्योतिश्चन्द्रसूर्य्यादि चिरानन्दं स्वाद्यं भक्ष्यमपिचिदानन्दम्॥

कहीं पर नित्यत्व के हेतु उन सबका चिद्धनत्व प्रतिपादित हुआ है, कारण सच्चिदानन्द वस्तुका ही नित्यत्व सूचित है, कभी भी मायिक वस्तु का नियत्व सम्भव नहीं है। यामल ग्रन्थ में वर्णित है-यदुनन्दन श्रीकृष्ण ही वृन्दावन को छोड़कर कहीं पर गमन नहीं करते हैं, आप सर्वदा ही द्विभुज हैं, कदाच चतुर्भुज नहीं हैं एवं आप असंख्य गोपिकाके साथ श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा करते हैं। यहाँ पर श्रीवृन्दावन श्रीकृष्ण, गोपी का क्रीड़न के नित्यत्व हेतु उक्त समस्त व्यक्ति का ही नित्यत्व सूचित हुआ है। पद्मपुराणीय पातालखण्ड में उक्त है, आश्चर्य का विषय है, यह मधुपुरी श्रीवैकुण्ठ से भी गरीयसी एवं धन्या है, कारण इस मधुपुरी में एकदिन मात्र निवास करने से ही भगवान श्रीकृष्ण में भक्ति उदित होती है। मधुपुरी जब चिन्मय वैकुण्ठधाम की अपेक्षा से भी गरीयसी है तब मधुपुरी का महा चिन्मयत्व सूचित हुआ है।

श्रिय आद्यश्चिदानन्दाः इति सुतरामेवा तत्रैव- ।
ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ॥
अनादिरादि र्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ।
सहस्र पत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत् पदं ॥
तत् कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवमिति ।

गोपाल तापन्याम्, एको वशी सर्वगः कृष्णः इड्यः । तापिन्याम् कृष्णोवै परमं दैवतम् । तापनी हयशीर्षयः । सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे इति । ब्रह्माण्ड पुराणे । नन्दव्रज जनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः, गोपालतापनीषु । योऽसौ परंब्रह्म गोपाल इति । कृषि र्भू वाचकः शब्दो णश्च निर्वृ त्तिवाचकः । तयोरैक्यं परंब्रह्मकृष्ण इत्यभिधीयते । गौतमीय तन्त्रे अष्टादशाक्षरमन्त्रव्याख्यायाम् । कृषि शब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्द दायकः । सुख रूप भवेदात्मा भावानन्द

सनत्कुमार संहिता में उक्त है–हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्ण की प्रकट लीलामें जो सब जिस प्रकार से पुराण में वर्णित है, नित्यलीला समूह में भी श्रीवृन्दावन भूमिमें वे सब उस प्रकार ही विद्यमान हैं, इसलिए इस श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण के दासगण, सखागण, पिता माता व प्रेयसीवृन्द ये सब ही नित्य हैं एवं श्रीकृष्ण के तुल्य गुणशाली हैं ।

पद्म पुराण में कथित है-श्रीकृष्ण कहे हैं, मेरी मथुरा व श्रीवृन्दावन भूमि का नित्या जानना । और भी मुख्य रूप में भी उन सबका सच्चिदानन्दमयत्व उक्त है, ब्रह्म संहिता में उस श्रीवृन्दावनधाम में कान्ता अर्थात् व्रजसुन्दरीगण ही लक्ष्मी स्वरूपा हैं, श्रीकृष्ण ही कान्त हैं, वृक्ष सकल कल्पतरु हैं, भूमि सर्वाभीष्टप्रद चिन्तामणिगणमयी है, जल अमृतमय है, उस स्थान की कथा ही गान है, गमन ही नाट्य है, वशी ही प्रिय सखी है, चन्द्रसूर्यरूप ज्योतिः सच्चिदानन्दमय है, अधिक क्या वहाँ का भोजन भी

मयः स्मृतः। श्रीभागवते। गूढं परंब्रह्म मनुष्यलिङ्गमिति। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनमितिच। विष्णुपुराणे। यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परं ब्रह्मनराकृतिरिति। गीतासु ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमिति। एषां प्राकृत लोकवत् प्रतीति चेष्टितं यथा दशमे। "यशोदोलुखले-दाम्नाबबन्ध प्राकृतं यथा। गोगोभिः स्तोभितोऽनृत। भगवान् बालवत् क्वचित्। "उवाह भगवान् कृष्णो श्रीदामानं पराजितः अय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतै रुपगीयमानमाहात्म्यं हरिं सामन्यतात्मजम्" इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहते बधूम्। तासां रति विहारेण श्रान्तानां वदनानि सः प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा

चिदानन्द है। सुतरां कान्ता, कान्त भूमि प्रभृति सब ही चिदानन्द स्वरूप हैं।

और भी उक्त ग्रन्थमें कथित है, सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर, अनादि का आदि, गोविन्द एवं सर्व कारणों के कारण स्वरूप हैं।

गोकुल नामक महद् धाम अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थान सहस्रदल कमलतुल्य हैं व उस कमल के कर्णिका स्वरूप ही उनका धाम अर्थात् श्रीनन्द-यशोदादि के साथ वासयोग्य श्रीकृष्ण का महान्तःपुर है। इस स्थान में अनन्तांश श्रीबलराम भी नित्य वास करते हैं।

श्रुति में उक्त है—"**एको वशो सर्वगः कृष्ण ईड्यः**"

"**कृष्णवै परमं दैवतम्**"

"**सच्चिदानन्द रूपाय कृष्णायाक्लिष्ट कारिणे**"

से सब श्रुति वाक्य में श्रीकृष्ण का सच्चिदानन्द रूपत्व व नित्यत्व स्पष्ट परिव्यक्त हुआ है। ब्रह्माण्ड पुराण में उक्त है—श्रीकृष्ण नन्दव्रज के जनसमूह के आनन्ददाता व सच्चिदानन्द मूर्त्ति हैं। तापनी में कथित है—जो गौ समूह को पालन करते हैं, जिनसे

शन्तमेनाङ्गपाणिना । एवं पूतना तृणावर्त्तवधादौ सर्वेव लीलाप्रायशः प्राकृवत् । श्रीकृष्णवत् तत् परिकराणाम् ॥ अलमति विस्तरेणेति॥७॥

मृत्यु भी भयभीत है, वह ही यह परब्रह्म गोपाल हैं। महाभारत में उक्त है–"कृष्ण" धातु सत्तावाचक है, "ण" निर्वृति वाचक है, इन दोनों के योग से कृष्ण शब्द की उत्पत्ति होती है, यह कृष्ण शब्द पर ब्रह्म का बोधक है। गौतमी तन्त्र की अष्टादशाक्षर मन्त्र व्याख्या में उक्त है–कृष्ण शब्द का अर्थ 'सत्ता' है "ण" प्रत्यय का अर्थ आनन्ददाता है, आत्मा सुखरूप है, अतएव इस कृष्ण शब्दके द्वारा भाव वा आनन्दमय परब्रह्म का बोध होता है, श्रीमद्भागवत् में कथित है, परब्रह्म ही मानव रूप में गूढ़ होकर अवतीर्ण है एवं परमानन्द सनातन पूर्णब्रह्म ही जिनका मित्र है। विष्णुपुराण में उक्त है–यहां पर परब्रह्म रूप में श्रीकृष्ण अवतीर्ण हैं। श्रीगीता कहती है--ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमिति अर्थात् मैं ही ब्रह्म की प्रतिष्ठा व आस्पद हूँ। अतःपर इन सबकी चेष्टा की प्राकृत लोकवत् प्रतीति का प्रमाण प्रदर्शित होता है–श्रीमद्भागवत् में श्रीयशोदा वह इन्द्रिय ज्ञानातीत रूप ब्रह्म को असाधारण प्रेमवात्सल्य विषयीभूत आत्मज जानकर प्राकृत बालक की भाँति रज्जु द्वारा उदूखल में बाँधी थी। भगवान् श्रीकृष्ण कभी भी गोपियों के करतल ध्वनि द्वारा किम्वा यदि नाचो तो लड्डू दूँगी, इस प्रकार स्तोभ वाक्य से प्रोत्साहित होकर अपर प्राकृत बालक के समान नृत्य करते थे।

वेद सकल यज्ञ पुरुष कहकर उपनिषत्गण ब्रह्म कहकर, सांख्य पुरुष बोलकर, योगगण परमात्मा कहकर एवं सात्वतगण श्रीभगवान् कहकर जिनकी महिमा गाते हैं, श्रीयशोदा उक्त हरि के प्रति स्वीय आत्मज ज्ञान करने लगी थी।

यह देखो ! बधूको वहन करते हुये कामी श्रीकृष्ण भारा क्रान्त हो गये थे। इसलिए यहाँ पर उनके पद चिह्न अधिक मग्न हुए हैं।

या पञ्चमावस्थितिगामि सम्वित्,
तद्वृत्तिरूपास्तदनन्यवृत्त्या ।
जानन्ति कृष्णं निजमेव बन्धुं,
तं प्राकृतं मन्यजना न चित्रम् ॥८॥

चित्रमिदं सर्वशास्त्र प्रणीतैश्वर्य्यस्य श्रीकृष्णस्येव तत् परिकरस्य च सच्चिदानन्द विग्रहत्वं तस्य प्राकृतवत् मननम्-अन्नमय-प्राणमय-मनोमय विज्ञानमय आनन्दमयेति । तत्राह वेति । ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः, ज्ञान वैराग्यश्चैवषण्णांभगइतीङ्गना इत्यत्र गणनायां पञ्चमावस्थितिगामि सम्वित् ज्ञानं तद्वृत्तिरूपाः तस्य ज्ञानस्य परिणतिरूपाः, तदनन्यवृत्त्या तत्तस्य ज्ञानस्यानन्य वृत्या न कृष्णात् अन्यत्रैश्वर्य्यादौ वृत्ति विषयो यस्या स्तयावृत्त्या । यद्वा वेद चतुष्टयात् श्रीभागवते यथा पुराणस्य पञ्चमवेदत्वं,चतुर्थपुरुषार्थतोऽपि प्रेम्णः पञ्चम पुरुषार्थत्वं श्रीचैतन्यचरितामृत श्रीहरिभक्ति विलासादौ यथोक्तं, तथैव मुक्तानां तुरीयावस्थितितोऽपि स्वरूप शक्तेः पञ्चमा वस्थितित्वं तद्गामिसम्वित् स्वरूपशक्ति निष्ठज्ञानं तद्वद्वृत्तिरूपाः श्रीकृष्ण परिकराः तदनन्य वृत्या स्वरूप शक्तेरेव वृत्तितया हेतुना तं

और भी कहा गया है—व्रजसुन्दरीगण रति विहार से श्रान्त होने पर करुण स्वभाव श्रीकृष्ण प्रेम प्रकाश पूर्वक स्वीय परम सुखकर कर-कमल द्वारा अतीव यत्न के साथ उन सबके वदन मार्ज्जन कर देते थे, अर्थात् स्वेद बिन्दु अपसारण व अलकावली का सम्बरणादि कार्य्य करते थे, इस प्रकार पूतना तृणावर्त्त वधादि सकल लीला ही प्रायशः प्राकृतवत् प्रतीत होती है, परन्तु श्रीकृष्ण के समान तदीय परिकरादि की चेष्टादि भी इसी प्रकार प्रतीति होती रहती है ॥७॥

सर्वशास्त्र प्रणीतैश्वर्य्य श्रीकृष्ण एवं तदीय परिकरगण के सच्चिदानन्दमयविग्रहत्व का प्राकृतवत् मनन अर्थात् अन्नमय,

श्रीकृष्ण निजं बन्धुमेव जानन्तीति नचित्रं नाश्चर्यम् श्रीकृष्णो यथा सम्विद्रुप स्तथैव तत् परिकरा अपि सम्वित् वृत्तिरूपतया सम्विद्रूपाः। श्रीकृष्णस्य सम्विद्रूपता । गौतमीय तन्त्रे दशाक्षर मन्त्र न्यासे सर्वज्ञादि गुणेष्वङ्गे, सम्विद्रूपे परात्मनीति। यद्ददाति परं ज्ञानं सम्विद्रूपे परात्मनीति च। श्रीकृष्ण परिकरस्य श्रीकृष्ण तुल्यतां तत्रैव श्रीकृष्णाभरणादेः पूजानन्तरं पार्षदपूजायां यथा। दामसुदामवसुदामकिङ्किणीर्गन्धपुष्पकैः अन्तः करणरूपा स्ते कृष्णस्य परिकीर्त्तिताः। स्वात्माभेदेन ते पूज्या यथा कृष्ण स्तथैव ते। प्रणवादिनमोऽन्तैस्तुमन्त्रै स्तान् परिपूजयेत इति बन्धुमनने। हेत्वन्तरमाह। प्राकृतम्मन्यजना इति। पण्डितम्मन्यवत्। अप्राकृतमप्यात्मानं श्रीकृष्णञ्च प्राकृतवन्मन्यन्ते ये श्रीकृष्ण परिकराः।

मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय ये पञ्चकोषरूप में मनन, अतीव आश्चर्य का विषय है। ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री ज्ञान, वैराग्य ये षड़ैश्वर्य्य के मध्य में गणना में पञ्चम स्थान प्राप्त सम्वित् व ज्ञान की वृत्तिरूप अर्थात् परिणति रूप जो ज्ञान है, उस ज्ञान की अनन्य वृत्ति है, अर्थात् श्रीकृष्ण व्यतीत अन्य ऐश्वर्य आदि में जिसका कोई विषय सम्बन्ध नहीं है, तादृशी वृत्ति के द्वारा ही सच्चिदानन्द मूर्त्ति को प्राकृतवत् मननकारी जनगण उक्त परब्रह्म श्रीकृष्ण को निजजन रूप में अवगत होते हैं, सुतरां यह आश्चर्य का विषय नहीं है।

अथवा श्रीभागवत में जिस प्रकार वेद चतुष्टय से पुराणों का पञ्चमवेदत्व, किम्वा श्रीचैतन्यचरितामृत एवं श्रीहरिभक्तिविलास आदि में चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष से भी प्रेम की पञ्चम पुरुषार्थता उक्त हुई है, उसी प्रकार मुक्त पुरुषगण की तुरीय अवस्थितिसे भी स्वरूप शक्ति का पञ्चमावस्थितित्व सूचित हुआ है, उक्त स्वरूप शक्तिगामी जो सम्बित् अर्थात् स्वरूप शक्ति निष्ठ ज्ञान है, उसी के ही वृत्तिरूप अर्थात् विषय रूप श्रीकृष्ण परिकरगण ही उस स्वरूप शक्ति की

तथाहि श्रीभागवते । अहो भाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनमिति । पूर्वश्लोकेलिखित प्रमाणबाहुल्येन च श्रीकृष्णस्य तत् परिकराणाञ्च आप्राकृतत्वं प्राकृत्वत् चेष्टितत्वं बन्धुमननञ्च ज्ञेयम् । विष्णुपुराणे ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंश्रये । ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्ज्जिते इत्यत्र सम्वित् शब्दस्य ज्ञान वाचित्वं श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि लीलायां व्याख्याकृतमिति ॥८॥

वृत्ति द्वारा श्रीकृष्ण को निज बन्धु रूपमें जानते थे। अतएव श्रीकृष्ण किस प्रकार सम्वित् रूप हैं, तदीय परिकरगण भी उस प्रकार सम्वित् शक्ति की वृत्तिरूप होने के कारण सम्वित् रूप हैं। श्रीकृष्ण की सम्वित् रूपता श्रीगौतमीय तन्त्रस्थ दशाक्षर मन्त्रन्यास में विवृत हुई है। यथा जिनमें सर्वज्ञादि गुण विद्यमान हैं वही सम्विद्रूप परमात्म हैं एवं जो परम ज्ञान प्रदान करते हैं, वह ही सम्विद्रूप परमात्मा हैं।

और भी उक्त तन्त्रमें श्रीकृष्ण परिकरगण की श्रीकृष्ण तुल्यता स्पष्ट परिव्यक्त हुई है। श्रीकृष्ण की आवरणादि पूजा के अनन्तर पार्षदगण की अर्च्चना कही गई है। दाम, वसुदाम, सुदाम, किङ्किणी श्रीकृष्ण के अन्तःकरण स्वरूप हैं, श्रीकृष्ण जिस प्रकार हैं वे सब भी उसी प्रकार हैं, इस प्रकार अभिन्नात्मा रूपमें गन्ध पुष्पादि द्वारा उन सबकी अर्च्चना कर्त्तव्य है। पूजा करने के लिए एक नाम के आदि में प्रणव का एवं अन्त में नमः शब्द का योग से अर्च्चन मन्त्र से उन सबकी पूजा करें।

अनन्तर परब्रह्म श्रीकृष्ण को बन्धु मानने के लिए प्रकारान्तर कारण निर्देश करते हैं। "प्राकृतम्मन्यजनः" यह पद पण्डितम्मन्य की भाँति निष्पन्न हुआ है अतएव अप्राकृत होने पर भी जो लोक आत्मस्वरूप श्रीकृष्ण को प्राकृतवत् मानते हैं, वे सब ही श्रीकृष्ण के

सर्वोत्तमानामपि सर्वतः स्यात् स्वन्यूनभावः प्रभुभक्तिशक्त्या ।
प्रत्यक्षमीक्षे व्रजलोक एतं तं प्राकृतम्मन्यतमे चिदच्चर्ये ॥९॥

पूर्वश्लोके न चित्रमिति यदुक्तं तदेव स प्रमाणं यथार्थानुभवेनाह सर्वोत्तमानामिति । प्रभोः श्रीकृष्णस्य या भक्तिस्तस्या या शक्तिस्तया

परिकरगण हैं। श्रीमद्भागवत् में वर्णित है– अहो ! नन्दगोप एवं व्रजवासीगण के भाग्य कैसा आश्चर्यजनक है ? परमानन्द स्वरूप सनातन पूर्णब्रह्म उन सबके मित्र हुए हैं।

विष्णु पुराण में कथित है– हे भगवन् ! ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित् ये वृत्तित्रय विशिष्टा मुख्या शक्ति सर्वाधिष्ठान स्वरूप आपमें विषय-वियोगादि जनित तापप्रदा तामसी एवं प्रसाद एवं ताप व सुख-दुःख उभय मिश्रा राजसी यह त्रिगुणा प्रकृति की अवस्थिति आपमें नहीं है, कारण आप त्रिगुण वर्जित हैं, वह, गुणमयी जीव में रहती है, सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के स्वरूप के साथ आनन्द रूप से प्रकाशित शक्ति का नाम ही स्वरूप शक्ति है। ह्लादिनी, सन्धिनी, सम्वित् स्वरूप शक्ति की ही वृत्ति है। कार्य क्षमता का नाम ही शक्ति है एवं उस शक्ति की क्रिया का नाम ही वृत्ति है, श्रीभगवान् स्वयं आनन्द स्वरूप होकर भी स्वीय स्वरूप शक्ति की निज वृत्ति से आनन्दानुभव करते हैं एवं अपर को आनन्द अनुभव कराते हैं, उसका नाम ह्लादिनी वृत्ति है। आप स्वयं सत्ता स्वरूप होकर भी स्वीय स्वरूप शक्ति की जिस वृत्ति से निज सत्ता धारण करते हैं एवं अपर को धारण कराते हैं उसका नाम सन्धिनीवृत्ति है, और आप स्वयं ज्ञानस्वरूप होकर भी स्वरूप शक्तिकी जिस वृत्ति द्वारा स्वयं को जानते हैं एवं अपर को जनाते हैं उसका नाम सम्वित् वृत्ति है, यहाँ पर सन्धिनी सम्वित् से ह्लादिनी का उत्कर्ष सूचित हुआ है। सम्वित् शब्द ज्ञानवाची है, श्रीचैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ में इसका विशद विवरण है ॥८॥

सर्वोत्तमानामपि जनानां सर्वप्रकारेणाहं न्यून इत्याकारकः स्वस्य न्युनभावः स्यादिति यः प्रसिद्ध स्तमेतं स्वन्यूनभाव व्रजलोके प्रत्यक्षमहमीक्षे। स्वेषां स्वन्यूनभावं सर्वोत्तमश्च विशेषण द्वयेनाह-प्राकृतं मन्यतमे इति स्वं प्राकृतं मन्यमानानांमध्ये श्रेष्ठे। व्रजस्थ जना आत्मानमति शयेन प्राकृतं जानन्तीत्यर्थः। चिदर्च्च्येइति। चिती चित् स्वरूपाणां मध्ये अच्चर्ये पूजनीये। यद्वा चित् स्वरूपाणा-मुद्धवादीनामच्चर्य्ये। तथाहि उद्धववाक्यम्। आसामहो चरणरेणु जुषामहं स्याम्, वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनामित्यादि। वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशेत्यादि च भक्तया स्वन्यूनभावं श्रीनारदस्य यथा। मत् समो नास्ति पापात्मा नापराधी च कश्चन, परिहारेऽपि लज्जा मे किंब्रुवे पुरुषोत्तम इति नारद शिष्यभूतानां

पूर्व श्लोक में प्राकृतवत् प्रतीति आश्चर्यकर नहीं है, इस प्रकार जो कथन है, ग्रन्थकार यथार्थानुभव द्वारा प्रस्तुत श्लोक में उक्त कथन का प्रमाणित करते हैं। प्रभु भक्ति श्रीकृष्ण भक्ति की शक्ति द्वारा सर्वोत्तम जनगण का भी सर्व प्रकार से मैं न्यून हूँ इस प्रकार अपना न्यूनभाव उपस्थित होता है, इस प्रकार स्वकीय न्यून भाव व्रजलोकमें मैं प्रत्यक्ष दर्शन कर रहा हूँ और भी जो सब व्यक्ति प्राकृतम्मन्यतम एवं जो सब व्यक्ति चित् स्वरूपगण के मध्य में पूजनीय हैं वे सब सर्वोत्तम होकर भी अपने में न्यूनभाव प्रकाश करते हैं, जो सब-जन अपने के प्रति प्राकृत ज्ञान रखते हैं, तादृश जनगण के मध्य में श्रेष्ठ व्यक्ति को ही प्राकृतम्मन्य कहा गया है। व्रजस्थ जनगण ही निज को अतिशय प्राकृत रूपमें जानते हैं। सुतरां "प्राकृतम्मन्यतम" वाक्य व्रजवासिवृन्द को निर्देश कर रहा है एवं चित् स्वरूप भागवत्गण के मध्यमें श्रेष्ठ श्री उद्धव आदि ही यहाँ पर उद्दिष्ट हुए हैं। कारण श्रीउद्धव कहे हैं, परम भागवत श्रीउद्धव अत्यन्त दीनता के साथ अपने को नीचाधम मानकर प्रार्थना करते

श्रीप्रह्लाद ध्रुवादीनां बहव एव स्वन्यून बोधिका: श्लोका: श्रीभागवतादौ सन्ति। ब्रह्मण:। तद् भूरि भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकमित्यादि । व्रजवासि मुख्यतमस्य श्रीनन्दस्य वाक्यं श्रीगर्गमुनि प्रति यथा। महद्विचलनं नृणां गृहीणां दीनचेतसाम् । निःश्रेयसाय भगवन् कल्पतेनान्यथा क्वचित् । पूतनादिवधानन्तरं सर्वैरेव व्रजवासिभि: श्रीकृष्णस्य स्वानाञ्च प्राणादि रक्षायां प्राचीनसुकृत ब्रह्मणाशीर्वादादय एव कारणत्वेनोक्तत्वात् । श्रीकृष्णनिष्ठस्वनिष्ठ प्राकृतत्व मननं सुप्रसिद्धमेव सर्वेषां व्रजवासिनाम् ॥६॥

हैं—अहो ! मैं ये सब गोपियों के चरण-रेणु-सेवी, वृन्दावनादि लतागुल्मादि औषधि के मध्य में कोई भी एक होकर जन्म प्राप्त करूँ, मेरी अभिलाष है। कारण श्रीकृष्णाभिसार के समय वर्त्मावर्त्म विचार न कर गोपीगण जब श्रीकृष्ण के समीप में उपस्थित होंगे, तब तृणादि रूप मेरे मस्तक पर चरणार्पण करेंगे। सुतरां अनायास से ही उक्त चरण-रेणु के प्रचुर स्पर्श की योग्यता प्राप्तकर हम धन्य होंगे। अतएव नन्द व्रजस्थ अङ्गनागण के चरण-रेणु की बारम्वार वन्दना करता हूँ।

भक्ति प्रभाव से नारदजी में भी इस प्रकार नीच भाव का उदय हुआ था, जैसे हे पुरुषोत्तम ! मेरे समान पापात्मा व अपराधी जगत् में और कोई भी नहीं है" इस प्रकार कहने की बात ही क्या, अपराध मार्ज्जना के लिए आपके निकट में दैन्य प्रार्थना करने में भी मेरी लज्जा हो रही है।

परन्तु श्रीनारद के शिष्य प्रह्लाद ध्रुवादि के भी इस प्रकार दैन्य बोधक अनेक श्लोक श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थ में विद्यमान हैं और भी सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा भी गोकुलवासियों के सौभाग्यातिशय्य को देखकर अतीव दीनभाव से कहे थे—मनुष्यलोक के मध्यमें इस मथुरा

तेनैव तस्यैव वशस्तथैव तत्रैव नित्यं विलसत्यलं सः।
आत्यन्तिकैरेव रहस्य रस्यै माधुर्यपूरैरमित प्रकाशैः ॥१०॥

तेनैव सर्वोत्तमानामपि स्वन्यूनभावैव तस्यैव व्रजलोकस्यैव स श्रीकृष्ण तथैव स्वन्यून भावानुरूपैव वशःसन् तत्रैव व्रजलोक एवामित प्रकाशै नित्यं विलसति। कीदृशैस्तत्राह आत्यन्तिकैरेव परमसीमावस्थैरेव। रहस्येन हेतुनारस्यै रससमूह युक्तैः। अतएव

धाममें, उसके मध्यमें इस गोकुल अथवा मधुवन में दूर्वादि कोमल तृण जन्म प्राप्ति भी महाभाग्य की बात है, कारण उसमें गोकुलवासी जिस किसी व्यक्तिकी पदधूलीके द्वारा अभिषिक्त होने की संभावना है।

इस स्थल में श्रीगर्ग मुनि के प्रति व्रजराज श्रीनन्दजी के वाक्य भी विशेष उल्लेख योग्य है - हे भगवन् महात्मा व्यक्तिगण स्वीय आश्रम से अन्यत्र गमन करते हैं, वह जाया पुत्रादि विशिष्ट गृहिगण के मङ्गल निमित्त ही है। उसके मध्यमें जो सब व्यक्ति दीन चित्त अर्थात् अपने को तृणादपि दुर्भग मानते हैं, उन सबके प्रति ही उक्त साधुगण की कृपाधिक्य सम्भव सम्भव है। अन्यथा जो सब व्यक्ति उत्तमम्मन्य कठोर वक्रचित्त हैं, उन सबके भाग्यमें साधु कृपा लाभ दुर्घट है, सुतरां भवद्विध विज्ञ-जन का मादृश अधम-जन के भवन में आगमन, समुचित ही है, एतद् व्यतीत आगमन के लिए कुछ भी कारण कल्पित नहीं हो सकता है। पूतना वध के अनन्तर समस्त व्रजवासी, श्रीकृष्ण की प्राण-रक्षा हुई है, यह मानकर स्वधर्म निरत ब्राह्मणों से माङ्गलिक अनुष्ठान कराये थे। श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थ में इसका उल्लेख होने के कारण व्रजवासीमात्र ही श्रीकृष्णनिष्ठ व स्वनिष्ठ प्राकृत मानते हैं, यह सुसिद्ध हुआ है ॥६॥

व्रजस्थ सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगण के स्वदीनभाव द्वारा ही श्रीकृष्ण उन सबके निज-निज दीन भावानुरूप वशीभूत हैं। श्रीकृष्ण व्रजलोक

**अतोऽत्र या प्राकृतवत् लोकवत्तल्लीलापरंश्वर्यं विशेष-वर्षा ।
सैवातिरस्याचिदचित प्रशस्या माधुर्यसस्या महतामुपास्या॥११**

माधुर्य्यं पूरैः । माधुर्य्याणां पूरोऽतिशयोयत्र तैः । श्रीकृष्णस्य व्रजलोक वश्यत्वम् । आदिपुराणेऽर्जुनं प्रति श्रीकृष्णवाक्यं यथा । न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मरुद्रश्च पार्थिवो न च लक्ष्मी चात्मा च यथा गोपीजनो मम । न मां जानन्ति मुनयो योगिनश्च परन्तप । नच रुद्रादयो देवा यथा गोप्यो विदन्ति माम् । तपोभि र्न वेदैश्च नाचारै र्नच विद्यया । वशोऽस्मि केवलं प्रेम्णा प्रमाणं तत्र गोपिकाः । मन्माहात्म्यमित्यनन्तरं ताभ्यः, परं न मे पार्थ निगूढ़प्रेम भाजनमित्यादि ॥१०॥

अतोहेतोऽत्र व्रजलोके । परममैश्वर्य विशेषाणांवर्षा यत्र तथाभूता या प्राकृतलोकवत्तस्य श्रीकृष्णस्यलीला सैवातिशयेन तस्या आस्वादनीया रसयुक्ता वा चिदचितां मध्ये प्रशस्या प्रशस्ता ।

में परमसीमा प्राप्त निगूढ़ रूप समूह समन्वित होने के कारण माधुर्य्य की पराकाष्ठा रूपमें अमित प्रकाश के साथ नित्य विलास अर्थात् क्रीड़ा करते हैं । श्रीकृष्ण का व्रजलोक वश्यत्व आदिपुराणस्य कृष्णार्ज्जुन सवाद से सुस्पष्ट हुआ है—हे अर्ज्जुन ! व्रजगोपीगण मेरी जैसी प्रियतमा हैं, ब्रह्मा, रुद्र भी उस प्रकार प्रिय नहीं हैं, लक्ष्मीदेवी यहाँ तक आत्मा भी मेरा उस प्रकार प्रिय नहीं है । हे परन्तप ! गोपीगण मुझको जिस प्रकार जानती हैं, रुद्रादि देवगण, मुनिगण, योगिगण भी उस प्रकार मुझको जानने में सक्षम नहीं हैं ।

वैदिक अनुष्ठान द्वारा, तपस्या, सदाचार, वेदाध्ययनादि द्वारा मैं वशीभूत नहीं होता हूँ । केवल प्रेम के द्वारा ही वशीभूत हूँ । इसमें व्रजगोपिकागण ही प्रमाण हैं । सुतरां हे पार्थ ! उन सबकी अपेक्षा मेरा निगूढ़ प्रेमभाजन और कोई नहीं है ॥१०॥

इसलिए व्रजलोक में श्रीकृष्णलीला प्राकृत लोकवत् प्रतीत होती है, किन्तु वह लीला परम ऐश्वर्य विशेष की वर्षण स्वरूपा है,

प्रशंसनीया वा। माधुर्य्य एव रस्यो यत्र माधुर्य्योत्पादिका इत्यर्थः। अतएव महतामुपास्या। श्रीकृष्णलीला प्राकृतलोकवदपि परैश्वर्यवर्षणं तस्याः। नवनीत चौर्येदामबन्धनादौ यमलार्ज्जुन भञ्जनमेव अघासुरादिसर्वासुरबधादौ गोवर्द्धनधारणवन्यभोजन ब्रह्ममोहन इन्द्रमद भञ्जन कालीय दमन शङ्खचूड़बध रासलीलादौ च मनुष्य-वच्चेष्टयैव सर्वा लीलाः कृताः अपि परिणामे परमैश्वर्य वर्षिण्य एवेति। अत्रार्थे श्रीरूपगोस्वामिनः उक्ति र्यथा-करुणा-निकुरम्ब कोमले मधुरैश्वर्य विशेष शालिनि। जयति व्रजराज नन्दने नहि चिन्ता कणिकाप्युदेति नः। लघुभागवतामृते च ऐश्वर्यमाधुर्य ब्रह्माण्डे श्रीनारद

सुतरां अतिशय रस युक्त होने के कारण नित्य आस्वाद्य है, प्राकृत-अप्राकृत के मध्य में वह प्रशंसनीया एवं माधुर्य्य की उत्पादिका हैं, अतएव साधुगण की नित्य उपासनीय हैं। श्रीकृष्णलीला प्राकृत लोकवत् होने पर भी जो परमैश्वर्य वर्षणरूपा है, वह नवनीत चौर्य्य, दाम बन्धन, यमलार्ज्जुन अघासुरादि सर्वासुर बध, गोवर्द्धनधारिण, वन्य भोजन, ब्रह्ममोहन, इन्द्रमदभञ्जन, कालीयदमन, शङ्खचूड़ एवं रासलीला आदि से सुस्पष्ट ही सूचित हुई है।

कारण वे सब लीला मनुष्य की भाँति चेष्टा द्वारा अनुष्ठित होने पर परिणाम में परमैश्वर्य्यरस वर्षिणी है। इसलिए ही श्रीरूप गोस्वामी चरण ने कहा है, "करुणा-निकुरम्बमधुरैश्वर्य्य विशेष-शालिनि जयति ब्रजराज नन्दने नहिचिन्ता-कणिकाप्युदेति नः"। मधुरऐश्वर्य विशिष्ट करुणा से कोमल व्रजराज नन्दन श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष के साथ विराजमान होने से हमारे हृदय में कणमात्र चिन्ता भी नहीं उठती है।

श्रीनारदजी ने कहा है–चक्रधर के चक्र द्वारा भी जो सब दैत्य का विनाश साधन दुःसाध्य था। हे कृष्ण! आपने उन सब दैत्यों का विनाश नवीन बाललीला छल से खेल-खेल में किया है।

वृन्दावनं गोकुलधामगोष्ठं व्रजश्च नामानि शुभानि यस्य।
तदीय लोकीयमचिन्त्यकृत्यं वाञ्छामिकिञ्चद्दययैव तेषाम्॥१२

वाक्यम्। ये दैत्याः दुःशका हन्तुं चक्रेणापि रथाङ्गिना। ते त्वया निहिताः कृष्ण नव्यया बाललीलया। सार्द्धं मित्रै हरे क्रीड़न् भ्रूभङ्गं कुरुषे यदि। सशङ्काः ब्रह्मरुद्राद्या कम्पते खस्थितास्तदेति। क्रीड़ा माधुर्यं श्रीपाद्मे। चरितं कृष्ण देवस्य सर्वमेवाद्भूतं भवेत्। गोपाल-लीला तत्रापि सर्वतोऽति मनोहरा। श्रीबृहद्वामने। सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः। नहिजाने स्मृते रासे मना मे कीदृशं भवेदिति॥११॥

तेषां वृन्दावनादीनां किञ्चित् दययैव वृन्दावनादिकं वाञ्छामि, तथा च। सिद्ध देहेन वृन्दावनादि प्राप्ताभिलाषः कृतः। यद्वा। तेषां

हे हरे! सखागण के साथ क्रीड़ा करते-करते यदि आप एकबार मात्र भी भ्रूभङ्ग करते हैं, तब विमानस्थ ब्रह्मा रुद्र भी कम्पित होते हैं।

श्रीकृष्णदेव का चरित सब ही अद्भुत हैं। तन्मध्य में श्रीवृन्दावन में गोचारण लीला सर्वापेक्षा मनोहर है, इसलिए श्रीवामनदेव ने कहा है, यद्यपि मेरी अनेकानेक मनोहर लीला है, तथापि मैं नहीं जानता हूँ रासलीला का स्मरण कर मेरा मन किस प्रकार हो जाता है॥११॥

जो परम धाम प्रदेश भेद से वृन्दावन, गोकुल, गोष्ठ व व्रज नाम से अभिहित है, मैं उस श्रीवृन्दावन आदि की किञ्चित् करुणाके बल से ही श्रीवृन्दावनादि धाम एवं तदीय लोक सम्बन्धीय अचिन्त्य कृत्य लाभ की वाञ्छा कर रहा हूँ। इस वाक्य से सिद्ध देह द्वारा श्रीवृन्दावनादि प्राप्त्यभिलाष सूचित हुई है। कारण प्राकृत पाञ्च-भौतिक देह द्वारा वह चिन्मय माधुर्य लीलाधाम की प्राप्ति असम्भव है। अन्तश्चिन्तित साधन सिद्ध देह द्वारा ही वह लभ्य है।

**तच्चात्यचिन्त्यं चिदनन्यसारं चिदन्य भासञ्च तदेकमेव ।
अवान्तरानेक विभेदमेकं ग्रामा अरण्यानि गवां निवासाः ॥१३**

वृन्दावनादीनां दययैव वृन्दावनादिकं यत् किञ्चित् वर्णयितुं वाञ्छामि सम्यक् वर्णनासामर्थ्यन्तु अपारमहिमत्वादितिभावः। तथा यस्य वृन्दावन गोकुलादे : शुभानि नामानि किञ्चिद् वर्णयितु वाञ्छामि। तथाच वृन्दावनादेः प्रदेशभेदानां नामानि वक्तुमिच्छामीत्यर्थः। तदीयावृन्दावनीयाः तथा गोकुलधाम गोष्ठी या च ये लोकास्तं सम्बन्धि अचिन्त्यं यत् कृत्यं चेष्टितं तन् किञ्चित् वर्णितु ज्ञातु प्राप्तुञ्च वाञ्छामि। किञ्चित् पदवाच्यस्यानुक्तयैवायाति ॥१२॥

तत् वृन्दावनादिकः। अत्यचिन्त्यमतिशयेन चिन्तागोचरम्। पुनः कीदृशं ? चिदनन्यसारमिति। चिद्भिन्न सारश्चेति चिद्भिन्नाः प्राकृता जड़ास्तदभिन्ना अप्राकृताश्चित्स्वरूपास्तेषां सारभूतमित्यर्थः। चिदन्यभासं चिद् भिन्नवद्भासते नतु चिद्भिन्नं श्रीवृन्दावनादिकम्। तत् वृन्दावनादिकं चिद्रूपेण चिदन्यरूपेण च भासमानमेकमेव।

अथवा यद्यपि अपार महिमा विशिष्ट होने के कारण श्रीवृन्दावन आदि की करुणा से ही मैं उस श्रीवृन्दावन के विषय में किञ्चित् वर्णन करने का अभिलाषी हूँ। परन्तु वह वृन्दावन गोकुल आदि के शुभ-जनक नाम समूह भी प्रदेश भेद से नाम समूह एवं तत्रस्थ लोक सम्बधीय अचिन्त्यकार्यावली की भी किञ्चित् वर्णना करने की वासना कर रहा हूँ ॥१२॥

यह वृन्दावनादि धाम अतीव अचिन्त्य जड़ातीत है। अप्राकृत चित् स्वरूप का सारभूत एवं चिद्भिन्न की भाँति हैं,अर्थात् प्राकृतवत् प्रतीत होने पर भी प्राकृत चिद्भिन्न अर्थात् जड़ीय नहीं हैं, नित्य-चिन्मय हैं, सुतरां उक्त श्रीवृन्दावनादि चिद्रूप में अथवा चिद्भिन्न रूप में प्रकाशित होने पर भी एकमात्र चित्स्वरूप हैं। परन्तु ग्राम,

चिदन्य भासस्यापि चिद्रूपत्वात् । ग्रामारण्याद्यवान्तरानेक भेदमप्येक-मेवचिद्रूपत्वात् । तथाहि गोपाल तापनीश्रुतौ । साक्षाद् ब्रह्म गोपाल पुरी हीति । पातालखण्डे । अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी । दिनमेकं निवासने हरौ भक्तिः प्रजायते । अयोध्या मथुरा माया काशी-काञ्ची अवन्तिका । पुरि द्वारावतीचैव सप्तैता मोक्षदायिका । एवं सप्तपुरीणाञ्च सर्वोत्कृष्टन्तु माथुरम् । श्रूयतां महिमा देवि वैकुण्ठ भुवनोत्तममिति पाद्मे । नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा । श्रीभागवते मन्निकेतन्तु निर्गुणमिति । एवमेव लघुभागवतामृते । स तु माथुरभू रूप परिच्छिन्नोऽप्यथाद्भूतः स्फार सङ्कुचितोऽपि स्यात् कृष्णलीलानुसारतः । अत्रैव अजाण्डमालापि पर्याप्तिमुप गच्छति । वृन्दावन प्रतीकेऽपि याऽनुभूतैव वेधसा । इत्यतो रास-

---

अरण्य एवं गो-निवासादि अवान्तर विभेद समूह भी अभिन्न रूप हैं, अर्थात् एक चिन्मय स्वरूपमें प्रतीत होते हैं । गोपाल तापनी में उक्त है गोपाल की पुरी अर्थात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण की लीला धाम साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप चिन्मय है । पद्म पुराणस्थ पाताल खण्ड में उक्त है । अहो ! अतीव आश्चर्य का विषय है, यह मधुपुरी (मथुरा) श्रीवैकुण्ठसे भी गरीयसी है । क्योंकि यहाँ पर एकदिन भी अवस्थान करने से ही भक्ति का उदय होता है । सुतरां यह पुरी अति धन्या है । अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती, द्वारका ये मोक्षदायिका सप्तपुरी के मध्य में मथुरापुरी ही सर्वश्रेष्ठा एवं इसकी महिमा श्रीवैकुण्ठ की अपेक्षा से भी उत्तम है । और भी कथित है मेरा मथुराधाम, जिस प्रकार नित्य है, उस प्रकार श्रीवृन्दावन को भी नित्य जानना । श्रीभागवत में वर्णित है, मेरा धाम गुणातीत सुतरां चिन्मय है, इस प्रकार लघुभागवतामृत में भी वर्णित है, उस माथुर भूमिका स्वरूप परिच्छन्न होकर भी अद्भुत है, वह सङ्कुचित

लीलायां पुलिने यत्र यामुने। प्रमदाशत कोट्योऽपि ममर्यत्तत् किमद्भुतम् । स्वैःस्वैर्लीलापरिकरैं जंनै दृश्यानि नापरैः। तत्तल्लीलाद्यवसरे प्रादुर्भावोचितानि हि । आश्चर्यमेकदेवात्र वर्त्तमानान्यपि ध्रुवम्। परस्परमसंपृक्तस्वरूपाण्येव सर्वथा। कृष्ण बाल्यादि लीलाभि र्भूषितानि समन्ततः। शैलगोष्ठ वनादीनां सन्ति रूपाण्यनकेशः। त्रिभिः कुलकम्। लीलाढ्योऽपि प्रदेशोऽस्य कदाचित् किल वा केश्चन। शून्य एवेक्ष्यते दृष्टि यौगैरप्यपरैरपि। अतः प्रभोः प्रियाणाञ्च धाम्नश्च समयस्य च अविचिन्त्य प्रभावत्वान्नात्र किञ्चित् सुदुर्घटम् ॥१३॥

होकर भी कृष्णलीलानुसार क्रमशः वृद्धिशील है। जैसे ब्रह्माण्डमाला इस स्थान में पर्याप्त प्रायः है। कारण, श्रीवृन्दावन के एक देश रूप यमुना पुलिन में अनुष्ठित श्रीरासलीला में शत कोटि व्रजाङ्गना का एकत्र समावेश एक अद्भुत घटना है, यह केवल सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी ने अनुभव किये हैं, यहाँ पर तत्तत् लीलादि के समय उपयोगि रूप में जो दृश्य परिस्फुट होता है, वह केवल स्वस्व लीला परिकरजन द्वारा परिदृष्ट होता है और भी आश्चर्य का विषय यह है कि यहाँ पर स्वरूप समूह एक ही समय में वर्त्तमान होकर भी सब प्रकार से परस्पर अमिश्रित हैं। श्रीकृष्ण की बाल्यादि लीला द्वारा यह स्थान समन्तात् विभूषित है एवं गिरि, गोष्ठ, वन आदि की विविध शोभा माधुर्य से उद्भासित है। यह श्रीवृन्दावन प्रदेश नित्य लीलाढ्य होने पर भी कदाचित् अपर व्यक्ति (प्राकृतजन) दृष्टि सम्पन्न होकर भी उसका दर्शन शून्य के समान करते हैं। अतएव प्रभु, प्रभु के प्रियावर्ग, धाम व समय के अविचिन्त्य प्रभाव के हेतु यहाँ पर कुछ भी सुदुर्घट नहीं है ॥१३॥

सर्वस्य कश्चित् प्रकटः प्रकाशः
सदाभृशं प्राकृतवज्जनाद्यैः ।
यः प्राकृतैरेव युतोऽपि लीला
प्राकट्य काले पृथुवर्ण्यवत् स्यात् ॥१४॥
तत्तच्छिरोभूतमपारशोभं नन्दीश्वरं साधुगणा वदन्ति ।
नन्दीश्वरं तञ्च यदीयरूपं श्रीनन्दराजालयराजमानम् ॥१५

ग्रामादि सर्वस्य यः कश्चित् प्रकटः प्रकाशः प्रापञ्चिक लोक दृश्यो ग्रामादि प्रदेशः लीला प्राकट्यकाले प्राकृतैर्जनाद्यैर्युतोऽपि प्रकृतवत् स्यात् नतु प्राकृत इत्यर्थः । पृथु विस्तारं यथा स्यात्तथा वर्ण्यवत् वर्णनाविषयवत् स्यात् नतु तथाभूतः । ग्रामादीनां स्वस्व बुद्धया नाना प्रकारेण वर्णनायां कृतायामपि सम्यक् वर्णनासामर्थ्यन्तु विभुत्वादानन्त्याश्चिन्त्याश्चिन्त्यागोचरत्वाच्च ॥१४॥

प्रकट प्रकाश गतानामादौ नन्दीश्वरनामानं ग्राममाह । तत्तच्छितोभूतमिति । तत्तेषां ग्रामादीनां शिरोभूतं नन्दीश्वरं नन्दीश्वर नामानं शैलवरं वदन्ति । तं प्रसिद्धं नन्दीश्वरं महादेवञ्च यदीयरूपं वदन्ति ॥१५॥

ग्रामादि समूह का जो प्रकट प्रकाश, अर्थात् प्रापञ्चिक लोक का दर्शनीय ग्रामादि प्रदेश, श्रीभगवान् की लीला प्राकट्यकाल में प्राकृत जनादि युक्त होने के कारण सर्वदा प्राकृतवत् प्रतीत होने पर वह कदापि प्राकृत नहीं है । वह विस्तारित वर्णनीय विषय तुल्यबोध होने पर भी सम्पूर्ण वर्णनीय नहीं है । कारण, स्व-स्व बुद्धि की सहायता से विविध रूपसे वे सब ग्रामादि वर्णित होने पर भी उसका विभुत्व अनन्तत्त्व, अचिन्त्य व अगोचरत्त्व हेतु कदाच सम्यक् रूपसे वर्णना करने की सामर्थ्य नहीं है ॥१४॥

यदीय पूर्वोत्तर दक्षिणेषु वसन्ति लोका हृतसर्व शोकाः ।
सानौपुरः श्रीयुतनन्दराज पुरीपुराणामतः पुराणा ॥१६॥

प्राचोरराजीरचितामसारै-
र्गृहान्यलं मारकतानि यस्याः ।
स्तम्भाः प्रवालैः पटलानि हेम्ना-
येषां वृत्तिः सा स्फटिकै विभाति ॥१७॥

यदीयेति । नन्दीश्वराख्य पर्वतीय पूर्वोत्तर दक्षिण दिशासु हृतसर्वशोकालोका वसन्ति । यदीय सानौ नन्दीश्वर सानौ समभूमौ पर्वतैक देशे च महाशिलायां पुरोऽग्रे च श्रीनन्दराज पुरी । स्नु:प्रस्थ: सानुरस्त्रियामित्यमरः । कीदृशी । पुराणामतः पुराणा । पुराणोक्तितः पुराणा अनादि सिद्धा । तद्धामलीलापरिकर सहितस्य गोपालकस्य श्रीकृष्णस्य यो गापालमन्त्र स्तस्यानादि सिद्ध कथनादेव ॥१६॥

यस्याः पूर्य्याः प्राचीराणां राजीमसारैर्नीलिम इति प्रसिद्धै र्नीलवर्णमणिभिः रचिता विभाति । प्राचीरं प्रान्ततो वृत्ति रित्यमरः ।

अनन्तर प्रकट प्रकाशगत ग्राम समूह के मध्य से प्रथमत श्रीनन्दीश्वरका विषय ही विवृत हो रहा है । यह अपार शोभाशाली श्रीनन्दीश्वर ही उक्त ग्राम समूह की शिरोमणि हैं । साधुगण प्रसिद्ध नन्दीश्वर नामक शिवजी को ही इस शैलवर का स्वरूप जानते हैं । यह नन्दीश्वर में ही श्रीनन्दराज का आलय विराजित है ॥१५॥

नन्दीश्वर नामक पर्वत के पूर्व, उत्तर, दक्षिणदिक में नन्द लोकों का वास है वे सब ही सर्वशोकहीन-सदानन्द हैं । इस शैलवर सानुप्रदेश के सम्मुख भाग में ही श्रीनन्द महाराज की पुरी है । यह पुरी पुराण आगम आदि में अनादि सिद्ध रूप में वर्णित है लीला-धाम-परिकरादि सहित श्रीकृष्ण का श्रीगोपाल मन्त्र का अनादि सिद्धत्व प्रतिपन्न हुआ है ॥१६॥

वैदुर्य्य जाता वड़भी समूहा-
र्महामहोनीलमणीन्द्रजाट्टाः ।
महा प्रतीहारवरोऽपि यस्याः
तत् कौरविन्दो विलसत्यलं सा ॥१८॥

तथा यस्या गृहाणि मरकतमणिनिर्म्मितानि। येषां गृहाणां स्तम्भाः प्रवालैः पयला इति प्रसिद्धै रचिताः पटलानि छात इति प्रसिद्धानि जलादि निवारक उपर्य्याच्छादनानि हेम्नारचितानि। वनीकनीध्रे पटल इत्यमरः : येषां गृहाणां या वृत्तिरावरणभित्तिः सा स्फटिकैः रचिता सा पुरी विभाति ॥१७॥

यस्याः वैदुर्यमणिजाताः वड़भीसमूहाःसर्वोद्ध्वंगृहाः। आच्छादनं स्याद्वलभी गृहाणामिति हलायुधः। वलभीचन्द्र शालिकेति त्रिकाण्ड शेषः वलभी गृहचूड़ेति क्षीरस्वामी। महामहो महाकान्तिमन्तो नीलमनीन्द्राः इन्द्रनीलमणिश्रेष्ठास्तज्जाता अट्टालिकाः महा प्रतीहारवरः श्रेष्ठ द्वारोत्तमः सत् कौरविन्दः शोभन पद्मराग मणिनिर्म्मितः। स्तौ द्वार्द्वारं प्रतीहार इत्यमरः। सानन्दराजपुरी अलमतिशयेन विलसति ॥१८॥

उस पुरी की प्राचीरावली नीलवर्णमणि रचिता हैं। गृह समूह मरकत मणि निर्म्मित हैं, गृह की स्तम्भावलि प्रवाल रचित हैं, गृह की छत्त" सुवर्ण रचित है एवं गृह की आवरण भित्ति स्फटिक द्वारा निर्म्मित है। इस प्रकार उक्त पुरी शोभित है ॥१७॥

उस पुरी की चूड़ा समूह वैदुर्य्यमणि से गठित हैं, अट्टालिका सकल महादीप्तशाली इन्द्र नीलमणि द्वारा निर्म्मित हैं एवं उक्त पुरी का श्रेष्ठ तोरण द्वार शोभन पद्मराग मणि खचित है, इस प्रकार श्रीनन्द महाराज की पुरी अतिशय विलसित है ॥१८॥

मुख्यप्रकोष्ठे चतुरालयेऽस्या भाण्डारगेहं वरुणस्य दिश्यम् ।
श्रीकृष्ण वासः शुभदक्षिणस्थः श्रीरामधामोत्तरदिश्युदेति ॥१९
प्राच्यां गृहं तादृशमेव यत्र प्राच्यांश यस्यान्यतरप्रकोष्ठे ।
स्वपुत्रभद्राय निजेष्ट देवं नारायणं सेवत एव नन्दः ॥२०॥

कोशालयस्यान्वित दक्षिणांशे
कृष्णस्य धाम्नः शुभ पश्चिमेऽस्ति ।
या पाकशाला द्वयमध्यएव
विश्राम धामानुरुराधिकायाः ॥२१॥

अस्याः पुर्य्याः मुख्य प्रकोष्ठे कीदृशे चतुरालये आलय चतुष्टयान्याह । वरुणस्यदिश्यं पश्चिमदिक्स्थितं भाण्डार गेहमुदेतीति । एवं दक्षिणदिगस्थः श्रीकृष्णवासः श्रीकृष्णालयम् । उत्तरदिशि श्रीरामस्य धामेदेति ॥१९॥

यत्र मुख्य प्रकोष्ठे प्राच्यां पूर्वदिशि तादृशं श्रीकृष्ण गृह तुल्यं यस्य नन्दस्य गृहमुदेतीति पूर्वेणान्वयः । नन्दः यस्य इति पदस्य काकाक्षि गोलकन्यायेनोभयत्रान्वयः यस्य स्वगृहस्य प्राच्यामन्यतर प्रकोष्ठे स्वपुत्रस्य श्रीकृष्णस्य भद्राय निजेष्टदेवं श्रीनारायणं सेवते॥२०

कोषालयस्य भाण्डारगृहस्यान्वितो लग्नो यो दक्षिणांसस्तत्र

इस पुरी के चतुरालय मुख्य प्रकोष्ठ-अर्थात् उसके चारों ओर प्रधान कोठरी है, उसके मध्यमें पश्चिम दिक् में भाण्डार गृह है, दक्षिण दिक् में श्रीकृष्ण का आवास-गृह है एवं उत्तर दिक् में श्रीबलराम का आलय अवस्थित है ॥१९॥

उक्त मुख्य प्रकोष्ठ के पूर्व दिक् में अन्यतर प्रकोष्ठ में श्रीनन्द महाराज निज पुत्र श्रीकृष्ण के मङ्गल के निमित्र निज इष्टदेव श्रीनारायण की अर्च्चना करते हैं ॥२०॥

कृष्णस्य धाम्नोऽन्वित दक्षिणांशे
पाकालयस्यापि विराजमानः ।
आराम आस्ते सरसी च यत्र
रहो मनोज्ञं बहुगेहवेदिः ॥२२॥
यत् पार्श्वयोः सन्ति पुराणि गोदुहां
भूरीणि चारुणि समान्यलं तया ।
पश्चात्तु नन्दीश्वरएवराजते
नन्दीश्वरोयं सततं स वन्दते ॥२३॥

एवं श्रीकृष्णधाम्नःशुभरूप पश्चिमे या पाकशाला अस्ति द्वयोर्मध्ये श्रीकृष्ण विश्रामस्य धाम अस्ति ॥२१॥

श्रीकृष्ण धाम्नः पाकालयस्यापि अन्वितो मिलितो यो दक्षिणांश स्तत्र आरामः पुष्पमयवनमास्ते, सरसी सरोवरश्चास्ति । यत्रारामे सरस्याश्च रहो निर्जनं मनोज्ञाश्च, बहुगेह वेदिःश्रीराधाकृष्णयो मिलनादि सम्पादिका अस्ति ॥२२॥

यत् पार्श्वयो र्यस्या नन्दपुर्य्या पूर्वदक्षिणपार्श्वद्वये गोदुहां गोपानां भूरीणि पुराणिसन्ति । कीदृशानि ? तया पुर्य्यासह समानानि

भाण्डार गृह संलग्न दक्षिणांश में एव गृह के शुभ पश्चिम दिक् में जो पाकशाला है इन दोनों के मध्य में अर्थात् श्रीकृष्ण का गृह एवं पाकगृह एतदुभय के मध्यमें श्रीराधिका के क्षुद्र विश्राम भवन विद्यमान है ॥२१॥

श्रीकृष्ण का गृह एवं पाक-गृह जहाँ पर मिलता है उस दक्षिणांश में ही पुष्पोद्यान एवं सरोवर विराजमान है। उस पुष्पोद्यान में एवं सरोवर तीर में निभृत में बहुतर राधाकृष्ण मिलन-सम्पादिका गृह-वेदिका विद्यमान हैं ॥२२॥

तेषामपि प्रान्तगतात्यगम्याप्राचीरराजी मणिजातजाता ।
रत्नालयेरत्नजदेहलीके मुक्तादिरत्नावलितोरणाली ॥२४॥

यानीक्षमाना निगदन्ति भूयो
विमानवासानिति मर्त्यलोकाः ।
वैकुण्ठवासानिति नाकनाथाः
वैकुण्ठगास्ते रस सारसारम् ॥२५॥

पश्चाद्देशे नन्दीश्वरः पर्वत एव राजते ॥२३॥

तेषां गोपपुराणामपिवहिः प्रान्तःगता अतिशयेनागम्या । मणि समूह जाता प्राचीरराजि अस्तीति पूर्वेणान्वयः । तेषां गोप पुराणां यानि रत्न मयान्यालयानि तत्र तथा रत्नजाताया देहलीका । गृहावग्रहणी देहलीत्यमरः । तत्रमुक्तादि तेषां रत्नानामावल्या तोरणाली वन्दनमाला श्रेणी राजते ॥२४॥

यान् रत्नालयादीन् ईक्षमाणा मर्त्तलोकाः मनुष्या भूयोः बारम्वारं विमानवासान् स्वर्गीय विमानवासान् निगदन्ति व्यक्त वदन्ति । नाकनाथा इन्द्रादयः यान् दृष्ट्वा वैकुण्ठ वासान् निगदन्ति ।

उक्त नन्दपुरी के पूर्व-दक्षिण-पार्श्वद्वय में श्रीनन्दपुरी के तुल्य अतिशय मनोहर बहुतर गोपपुरी विद्यमान हैं। पश्चात् भाग में श्रीनन्दीश्वर पर्वत विराजमान है । अति सौभाग्यवशतः ही श्रीनन्दीश्वर महादेव उक्त शैलराज की सर्वदा वन्दना करते हैं ॥२३॥

उक्त गोपपुरी समूह के बाहर प्रान्तभाग में अतिशय अगम्य अर्थात् अलङ्घनीय मणि समूह द्वारा निर्मित प्राचीर राजि विद्यमान हैं एवं उस पुरी मध्य में जो सब रत्नमय भवन हैं उसकी देहली अर्थात् द्वाराग्रस्थान भी तद्रूपरत्न निर्म्मित है। उक्त देहली में मुक्तादि रत्नावली-रचित वन्दनमाला शोभित है ॥२४॥

पुरः प्रतीहार वरस्य यस्याः
समन्ततः पार्श्व युगस्य रस्याः ।
पुरोहितानाञ्च पुरोहितानां
ततः परेषाञ्च ततः परेषाम् ॥२६॥

वैकुण्ठगा वैकुण्ठवासिनो ये ते । रस सारसारं सर्ववस्तूनां मध्येऽति सुखदा मधुरादयो रसा स्तेषामपि सारभूतानि यनि वस्तूनि तेषांमपि सारं यान् निगदन्ति ॥२५॥

तस्याः प्राचीरराजेः पार्श्वयुगस्य समन्ततः चतुर्द्दिक्षु प्रतीहार वरस्य द्वारपालोत्तमस्य रस्याःपुरः रमणीय गृहाः सन्ति । ततः प्रतीहार पुरात् परेषां पुरोहितानां याजकानां पुरः, ततः परेषां पुरोहितानां पुरस्यहितकारिणां पुररक्षकानां पुरः ॥२६॥

उस रत्नालयादिका दर्शनकर मर्त्यवासी मनुष्यगण बारम्बार "यह स्वर्ग-भवन है" इस प्रकार स्पष्टतः घोषणा करते हैं, स्वर्गवासी इन्द्रादि-देवगणकी उसको देखकर यह वैकुण्ठ-भवन है, इस प्रकार प्रकाश करते हैं, और जो सब वैकुण्ठवासी हैं वे भी उस रत्नालय को रस-सार का है इस प्रकार कहते हैं, अर्थात् सकल वस्तु के मध्य में अति सुखद मधुरादि रस है, उस मधुर रस का सारभूत वस्तु है, उसका भी सारभूत है, इस प्रकार कहते हैं ॥२५॥

उक्त प्राचीर राजि के उभय पार्श्व के चारों दिक् में उत्तम द्वारपालगण के रमणीय गृहावली विद्यमान हैं, इसके बाद ही श्रेष्ठ पुरोहित अर्थात् याजकगण के पुर है एवं उसके बाद ही पुर के हितकारी श्रेष्ठ पुर रक्षकगण की पुरी विराजित है ॥२६॥

ततः परेषाञ्च पुरः क्रमेण
श्रेणी मुखानां परीतःपरीताः ।
ततश्च वीथी क्रमपण्य वीथि
वीथी च मध्ये परतोऽहिवीथी ।।२७।।
प्रान्तेषु यस्या नगरस्यरस्याः
शृङ्गारटकाख्यानभितोऽभितरताः ।
श्रेणीकृताः सूत्र निपात पाता
इवप्रतीता बहु पण्यवीथ्यः ।।२८।।

ततः क्रमेण परेषां श्रेणीमुखानां तैलिक ताबूलिकादीनां पुरः परितः चतुर्द्दिक्षु परीताः व्याप्ताः, ततो वीथीमार्ग कीदृशी ? वीथी क्रमेण पण्यानां ताम्बूलादिविक्रेय द्रव्यानां वीथीनां वीथी च चकारेण विक्रेयद्रव्यरहिता वीथी । तासां वीथीनां मध्ये परतोऽपि वीथी गलीति प्रसिद्धा ।।२७।।

यस्याः वीथ्याः प्रान्तेषु सीमास्थानेषु शृङ्गाटकाख्यान् चतुष्पथाख्यान् अभितोऽभित इति वीप्सया सर्वेषां चतुष्पथानां चतुर्द्दिक्षु सूत्र निपात पाताइव सूत्रधृत्वा कृताइव प्रतीता ज्ञान

अनन्तर क्रमशः तैलिक ताम्बूली प्रभृति श्रेष्ठ व्यवसायिगण के भवन चारों दिक् में परिवेष्टित हैं। तत् पश्चात् वीथि अर्थात् मार्ग विराजित है। ये सब मार्ग के मध्य में कुछ ताम्बुलादि विक्रेय द्रव्य के लिए प्रसिद्ध है, अर्थात् पण्यवीथी एवं अपर सब पण्य अर्थात् विक्रेय द्रव्य विरहित पथ है। सुतरां केवल गमनागमन के लिए प्रसिद्ध है, और वे सब पथ के मध्य-मध्य में और भी पथ अर्थात् गली विद्यमान है ये सब मार्ग के उभय प्रान्त में अर्थात् सीमास्थाने में हैं ।।२७।।

विषया। इव शब्देन नतु केनादि कृता:। तेनैवप्रकारेण नित्यसिद्धा। नगरस्य ता रस्या रमणीया श्रेणीकृता श्रेणीभूता बहु पण्यवीथ्य: पुष्प सुगन्धि द्रव्य वस्त्रालङ्कार मणिमुक्तादीनां बहु प्रकारं पण्यं विक्रेय द्रव्यं यत्र तथा भूता वीथ्य: सन्ति। चतुर्णां पथानां मिलनं यत्र स चतुष्पथः। तथाच। एक चतुष्पथ स्तस्य चतुर्दिक्षु वीथी चतुष्टयं पुनरपि चतुर्णां वीथीनां मिलनम्, चतुष्पथ शृङ्गार-चतुष्पथ: इत्यमर:। अत: परिपाटी नन्दीश्वर पर्वतस्य दक्षिण दिशायां मध्यस्थले श्रीनन्दालयस्य तस्य पूर्वपश्चिम दिशायां गोपानामालया:। तेषामालयानां चतुर्दिक्षु मणि निर्म्मित प्राचीर श्रेणी। प्राचीरस्य दक्षिणादि चतुर्दिशासु द्वारपालस्य पुर:। तत: पुरोहित ब्राह्मणानां पुर:। तद्वहि: पुररक्षकानां पुर: तत तैलिक ताम्बूलिकादीनां पुर:। तैलकादि गृहानां राजमार्गे विक्रेयद्रव्य गृहानि मध्ये निवासस्थानानि एवमेव पुष्प सुगन्धि द्रव्य रत्नादीनां विक्रेयादि पराणां स्थानानि ॥२८

चतुष्पथ निराजित हैं, जिस स्थान के चतुर्दिक में ही चारपथ हैं। अथवा जिस स्थान में चारपथ आकर मिलते हैं उसको चतुष्पथ कहते हैं। वे सब चतुष्पथ के चतुर्दिक का निर्म्माण जैसे सूत धर कर किया गया है, ऐसी प्रतीति होती है किन्तु वास्तविक वे सब किसी के द्वारा निर्म्मित नहीं है वे सब नित्यसिद्ध हैं। परन्तु नगर की रमणीय श्रेणीकृत पण्यवीथी समूह भी समसूत्रानुसार निर्म्मित हैं एवं पुष्पगन्ध वस्त्रालङ्कार मणि मुक्तादि बहुविध पण्य की (विक्रेय द्रव्य की) विपणि द्वारा सुशोभित है। अतएव नन्दीश्वर पर्वत के दक्षिण दिक् के मध्यस्थल में श्रीनन्दालय है। उसके पूर्व पश्चिम दिक् में गोपगण के आलय है, वे सब आलय के चारों ओर मणि निर्म्मित प्राचीर श्रेणी हैं, प्राचीर के दक्षिणादि चतुर्दिक में द्वारपालगण के पुर हैं। अनन्तर पुरोहित ब्राह्मणगण के पुर है। उसके वाहर पुर रक्षकगण के पुर हैं। पश्चात् ताम्बूली तैलिक आदि

नानामणीनां घटिता घटानि
लंसत्पताका वरमौक्तिकानाम् ।
प्रालम्ब कान्ता स्तरुवद्वसन्ते
प्रवालवार प्रघणाः विपण्यः ॥२८॥

कीदृश्यो विपण्यस्तत्राह नानामणीनां घटाभिः समूहै र्घटिता निर्म्मिताः लसन्त्य पताका यासु ताः । वसन्ते वसन्त काले तरुवत् विकसित पत्र पुष्पादि युक्त वृक्षवत् रत्नादिभि र्निर्म्माण चातुर्य्येण प्रालम्ब का स्वार्थ कः प्रालम्बा ऋजुलम्बि अन्ता भागा येषां ते । विपणीपक्षे । वर मौक्तिकानां प्रालम्बाकान्ता ऋजुलम्बि मुक्तामालानां कान्तिः किरणो यत्र । यद्वा मुक्तानां ऋजुलम्बिमाला अन्ते यासां ता अथवा मुक्तानां प्रालम्बेन कान्ताःकमनीयाः । प्रालम्ब ऋजुलम्बिस्यादित्यमरः प्रवालवार प्रघणा । वृक्षपक्षे । प्रवालवारैः नवीनः पल्लवसमूहैः प्रकर्षेण धनीभूताः । विपणि पक्षे । प्रवालाख्य-रत्नस्य वारैसमूहैः प्रघना वर्हिद्वार प्रकोष्ठा यासां ताः । वीणादत्तः प्रवालो स्त्री विद्रुमेनवपल्लवे इति रभसः । प्रवालमङ्कुरेऽप्य-स्त्रीत्यमरः । अङ्कुरः किशलयः लताकुसुमोऽत्ररोऽस्तु प्रवालः ।

के पुर हैं, राजमार्ग में पण्य भवन है एवं मध्य में निवास स्थान है, पुष्प सुगन्धि द्रव्य रत्नादि विक्रेय द्रव्य स्थान का विवरण भी उक्त रूप है ॥२८॥

उक्त विपणि समूह अर्थात् पण्य क्रय-विक्रय के स्थान समूह विविध मणि राजि से निर्म्मित हैं एवं उसमें विविध वर्ण की पताका सुशोभित है । विकसित पुष्प-पत्रादि के भार से तरु समूह के अन्त भाग जिस प्रकार ऋजुलम्बी व कमनीय है उस प्रकार उक्त विपणि समूह के अन्तभाग में उत्कृष्ट मुक्तामाला ऋजुभाव में लम्बित है, अथवा वहाँ पर ऋजुलम्बि मुक्तामाला को कान्ति उद्भासित है ।

काचिद्वसन्त श्रियएवयद्व-
न्नानाप्रसुनैरतिसौरभास्ता: ।
कश्चिन्महाशैलवरा इवालं
नानाविध द्रव्यसुगन्धिगन्धाः ॥३०॥
काश्चिन्मणीनां खनयो यथा वा
नानामणिद्योतितदीप्यमानाः ।
काश्चिद्विलासि प्रवरा इवान्याः
कस्तूरिका–कुङ्कुम मुख्यगन्धाः ॥३१॥

पल्लवाङ्कुर इति हलायुधः । प्रघाणः प्रघनालिन्दाः वहिर्द्वार प्रकोष्ठके । अत्र टीका । अयं वहिर्द्वार वाद्य पिण्डके । वार सङ्घात सञ्चयाः इति निवहावसरौ वावौ इति चामरः । विपणिः पण्य वीथिका इत्यमरः । पण्यं विक्रेय द्रव्य तस्य वीथिकाः क्रेयविक्रेय स्थानानीत्यर्थः ॥२९॥

काश्चित् ता वीथ्यः वसन्तश्रियो यद्वत् नाना प्रसूनै र्नानापुष्पै रति सौरभास्तथाति सुगन्ध युक्ताः शैलवराः पर्वत श्रेष्ठा इव नाना द्रव्यानां सुगन्धिभिर्गन्धयुक्ताः ॥३०॥

पद्मरागादिमणीनां खनयः उत्पत्ति स्थानानि यथा मणीनां

अपि च तरुराजि जैसे प्रवाल वार हैं अर्थात् नवीन पल्लव समूह द्वारा प्रकृष्ट रूप से घनीभूत हैं, उसी प्रकार उक्त विपणि सकल वसन्तकाल में पुष्पित तरुराजि की भाँति शोभित हैं ॥२९॥

वसन्त जिस प्रकार विविध कुसुम द्वारा अति सौरभ्य है। उस प्रकार अति सुगन्धयुक्त किसी-किसी पर्वत श्रेष्ठ के समान किसी किसी विपणि भी नानाविध द्रव्य की सुगन्ध से गन्ध युक्ता होकर शोभित है ॥३०॥

आनन्द वृन्दावन रीति लेशं वेशं विधातुं वचसां कवीना ।
वीणामिवस्पृष्टुमयोग्यतानां तानांशवत् किञ्चनसूचयानि॥३२
स्वेस्वेसरस्येव हि यत्र मत्सर इतिप्रयोगःक्रियते क्वचिज्जनैः ।
स्त्रीमेखलादौखल इत्युदीर्य्यते यत्कोमलादौ मलशब्द उच्यते।३३

कान्त्या प्रकाशते तथा काश्चित् वीथ्यःनाना मणिभिः द्योतिताः सत्यः दीप्यमानाः प्रकाश वहुलाः। विलासिनां प्रवरा इवान्या विपण्यः कस्तुरी कुङ्कुमयो मुख्यौ प्रधानौ गन्धौ यत्र तादृश गन्ध युक्ताः॥३१॥

कवीनां वचसां वाक्यानां वेशं सौन्दर्य्यं विधातुं आनन्द रूप वृन्दावनस्य या रीति स्तस्या लेशं। यद्वा आनन्द वृन्दावन चम्पूनाम्नो ग्रन्थस्य या रीति स्तल्लेशं वीणायां तानांशमिव किञ्चन सूचयानि ज्ञापयानि। गानसमये वीणामिव गानशोभार्थं वीणायां तानलेशं यथा सूचयाति तथेत्यर्थः वीणां कीदृशीं स्पृष्टु मयोग्यस्तानाययाताम्॥३२॥

रीतिमाह स्वे स्वे सरसि स्वीये स्वीये सरोवरे ममसर इत्यर्थे

पद्मरागादि मणि समूह की खनि, अर्थात् उत्पत्ति स्थान जैसे मणि सकल की कान्ति से उद्भासित है उसी प्रकार किसी-किसी विपणि विविध मणिराजि की किरण से देदीप्यमान हैं और भी किसी-किसी विपणि विलासी प्रवर की भाँति सुसज्जित हैं अन्य सब विपणि प्रधानतः कुङ्कुम कस्तुरी की गन्ध से सुगन्धियुक्त हैं ॥३१॥

गान के समय गान की शोभा सम्पादनार्थ वीणायन्त्रा द्वारा जिस प्रकार तान-लेश सूचित होता है। उस प्रकार कविगण के वाक्य सौन्दर्य्य विधान के लिए आनन्द रूप श्रीवृन्दावन की रीति का लेशाभास है अथवा आनन्द वृन्दावन चम्पू नामक ग्रन्थ की रीति लेश स्पर्शना योग्य खण्डित वीणा का तांनांश की भाँति किञ्चित् विज्ञापित कर रहा हूँ ॥३२॥

कहीं पर कोई व्यक्ति निज-निज सरोवर को मत्सर कहते हैं,

प्रदोष दोषाकररोषमोष दोषादिशब्दश्रुतिरस्ति यत्र ।
सायं शशाङ्क प्रणयाख्यकेलिनिशाविकेष्वेव कदाचिदेव ॥३४

मत्सर इति प्रयोग क्वचित् जनैः क्रियते । अविद्या जन्य परोत्कर्षा सहनरूपो मत्सरो यत्र नास्तीत्यर्थः स्त्रीणां मेखलादौ खलशब्द प्रयोगः क्रूर वाचकः । खलस्तु यत्र नास्तीत्यर्थः ॥३३॥

प्रदोषादि शब्दानां यत्र व्रजलोके सायंकालादिष्वेव कदाचिदेव नतु सर्वदा श्रुतिः श्रवणमस्ति नतु निन्दावाचके वस्तुनि । तथा च सायंकाले प्रदोषशब्दस्य श्रवणं नतु प्रकृष्ट दोषे निन्दातिशय वाचक प्रदोषो यत्र नास्तीत्यर्थः । शशाङ्के चन्द्रे दोषकर शब्दस्य श्रवणं नतु दोषाणामाकरे उत्पादके । तथाच तादृशजन स्तत्र नास्ति, प्रणयाख्ये

अर्थात् मेरा सरोवर हैं, ऐसा कहते हैं, इस अर्थ में ही श्रीवृन्दावन में मत्सर शब्द का प्रयोग होता है, किन्तु अविद्या जनित परोत्कर्ष असहन रूप मत्सर अर्थात् पर श्रीकातरता वहाँ पर नहीं है। रमणीगण की मेखलादि में ही खलशब्द का प्रयोग होता है, किन्तु क्रूर वाचक खल वहाँ पर नहीं है और भी कोमलादि शब्द में ही मलशब्द की विद्यमानता है। किन्तु कलङ्क मालिन्यादि रूप वहाँ बिलकुल नहीं है । यह तात्पर्य है ॥३३॥

उस व्रजलोक में प्रदोष, दोषकर, रोष, मोष व दोषादि शब्द कभी-कभी श्रुतिगोचर होते ही हैं, किन्तु वे सब सर्वदा नहीं हैं एवं निन्दा वाचक भी नहीं हैं, सायङ्काल में ही प्रदोष शब्द सुनने में आता है । किन्तु वह प्रकृष्ट दोष रूप निन्दावाचक नहीं है, उक्त रूप दोष वृन्दावन में आदौ नहीं है। चन्द्र के प्रति दोषाकर शब्द का प्रयोग सुनने में आता है । किन्तु वह दोष का आकर अर्थात् खनि" इस अर्थ में नहीं है । प्रणय में 'रोष' शब्द का प्रयोग सुनने में आता है, किन्तु वह प्रणय रोष अपकारक नहीं है। विहार के समय मोष

छत्रादि दण्डे शुभचामरादि दण्डे च दण्ड श्रुतिरस्ति यत्र ।
नीव्यादिकेशादिक एव बन्धःसमाधि योगादिक राधिशब्दः॥३५
कस्तुरिका-कुङ्कुमचन्दनादि पङ्केषु पङ्क श्रवणञ्च यत्र ।
कौटिल्यमास्ते वरकुण्डलादौ काठिन्यमप्यस्ति शिलादिकेषु॥३६

रोषस्य श्रवणं नत्वपकारके । केलौ विहार समये मोषस्य बलात कारेण वस्त्रादि-ग्रहणस्य श्रवणं नतु दुर्बले अपकारकादौ । निशायां रात्रौ दोषशब्दस्य श्रवणं नतु परोपकार पर निन्दादि दोषाणां श्रवणामिति ॥३४॥

यत्र छत्र चामरादि दण्डेषु दण्ड शब्दस्य श्रवणमस्ति । राजकृता पराध-कृतदण्डस्य यत्र श्रवणमपि नास्तीत्यर्थः । नीवि-केशादिके बन्धो बन्धनं यत्रास्ति नत्वपराधादि जन्य हस्तपादादेः । समाधि योगादिके आधिशब्दोऽस्ति नतु मनः पीड़ा रूपाधिरस्तीत्यर्थः ॥३५॥

कस्तुर्य्यादि पङ्केषुपङ्कस्य श्रवणं । नतु जल मृत्तिकादि मिलन

अर्थात् बल पूर्वक वस्त्रादि ग्रहण प्रयत्न श्रवण गोचर होने पर भी वह दुर्बल के प्रति दौरात्म्य नहीं है और भी रात्रिकाल में जो दोष शब्द का प्रयोग होता है वह अपर का अपकारि अथवा परनिन्दादि दोषका वाचक नहीं है । यह ही उस व्रजलोक का विशेषत्व है ॥३४॥

वहाँ पर शोभन छत्र-चामर आदि में ही दण्ड शब्द श्रुति-गोचर होता है, राजद्वार में अपराधी के प्रति दण्ड इस प्रकार कभी सुनने में नहीं आता है, रमणीगण की नीवी व केशादि बन्धन उद्धेश्य में ही 'बन्ध' श्रवण गोचर है । अपराधादि के हेतु हस्तपदादि का बन्ध है, इस प्रकार सुनने में नहीं आता है । योग आदि में जो समाधि होता है, उसमें आधि शब्द का प्रयोग होता है अन्यथा मनः पीड़ादि रूप आधि कदाच विद्यमान नहीं है ॥३५॥

वहाँ पर कस्तुरी-कुङ्कुम-चन्दनादि पङ्क में ही पङ्क शब्द का

पुष्पादि धुलीषु रजः प्रयुज्यते
यत्रान्धकारे तम इत्युदीर्य्यते ।
द्वन्द्वश्च युग्मे पवने च मन्दता
चाञ्चल्यमास्ते हरि लोकनाय ॥३७॥

कृतस्य। वरकुण्डलादौ उत्तम केशादौ कौटिल्यं वर्त्तते । नतु तद्हृद्यादिषु। शिलादिषु काठिन्यं नतु अन्तः करणादिषु ॥३६॥

पुष्पधुलीषु रज इति प्रयोगं करोति। नतु गुणादौ तस्मात् रजोगुणादि नास्ति। एवमन्धकारे तमः नतु तमोगुणादौ, युग्मे स्त्री पुरुष द्वये द्वन्द्वः, नतु सुखदुःख भद्रा भद्रादौ, तेन यत्र दुःखमभद्रादिकं नास्तीत्येकाभावेन द्वन्द्वाभावः। पवने मान्द्यं, नतु बुद्ध्यादौ। कृष्ण दर्शनार्थं चाञ्चल्यं। नत्विन्द्रियादिविकारजन्यम् ॥३७॥

प्रयोग होता है, जल मृत्तिकादि मिलन से उद्भुत पङ्क की कथा वहाँ पर बिलकुल (आदौ) सुनने में नहीं आती है, उत्तम केश पाशादि में ही कौटिल्य विद्यमान है किन्तु उन सब व्रजवासी के हृदयमें कौटिल्य का अस्तित्व आदौ नहीं है शिलादि में काठिन्य शब्द दृष्ट होता है, किन्तु किसी के अन्तःकरण में काठिन्य का लेशाभास भी परिदृष्ट नहीं होता है ॥३६॥

पुष्पादि के रेणु में ही 'रज' शब्द का प्रयोग होता है। गुण आदि के उद्धेश्य से नहीं है। अतएव वहाँ पर रजोगुणादि की विद्यमानता नहीं है, इस प्रकार अन्धकार में ही तमशब्द का प्रयोग होता है तमोगुणादि के उद्धेश्य से नहीं। स्त्री पुरुषद्वय में ही 'द्वन्द्व' शब्द प्रयुक्त है, सुख-दुःख भद्र अभद्र आदि के उद्देश्य से द्वन्द्व शब्द का प्रयोग नहीं होता है। सुतरां वहाँ पर सुख-दुःख अभद्रादि नहीं है, एक का अभाव से द्वन्द्व का अभाव हो है। पवन में मन्दता दृष्ट होता

मध्यादिके क्षीणः पदप्रयोगो यत्रोदकेष्वेव च नीचगत्वम् ।
विषाद दैन्य श्रममोहनिद्रालस्यादयोऽपि व्यभिचारिभावे॥३८

जानन्ति गा एव हि कामधेनुः
सामान्य वृक्षानिति कल्पवृक्षान् ।
चिन्तामणीन् यत्र शिलावदेव
व्रजस्य का सम्पदतो हि वाच्याः ॥३९॥

मध्यादिके कट्यादौक्षीण प्रयोगः नतु सामर्थ्यं धनदेहादेन्यूनता हेतुकक्षीणपदप्रयोगः। उदकेषुजलेषु नीचगामित्वं । नतु कस्यादि वस्तुनोऽलाभाज्जननिष्ठः। विषादादयो व्यभिचारिभावे सञ्चारिभावे सन्ति। नतु धनजनादे नाशजौ विषाददैन्यौ। अति दुःखादि जन्यः श्रमः। अज्ञानज मोहः। तमोजन्या निद्रा श्रमातिशयजन्यालस्यादयो सन्तीत्यर्थः ॥३८॥

यत्र कामधेनु कल्पवृक्ष चिन्तामणीन् सामान्य गाः सामान्य

है किन्तु बुद्धि आदि की मन्दता दृष्ट नहीं होती है, कृष्ण दर्शन के लिए ही चाञ्चल्य लक्षित होता है किन्तु इन्द्रिय आदि का विकार के लिए किसी प्रकार चाञ्चल्य लक्षित नहीं होता है ॥३७॥

वहाँ पर जनगण की कटिदेश आदि के उद्देश्य में ही क्षीण शब्द प्रयुक्त होता है, सामर्थ्य-धन-देह आदि की न्यूनता में क्षीण शब्द प्रयुक्त नहीं होता है, वहाँ पर जल का ही नीच गामित्व सूचित होता है, किन्तु किसी वस्तु का अलाभ में नीच गामित्व अर्थात् नीचजन की प्रति निष्ठा लक्षित नहीं होती है। विषाद, दैन्य, श्रम, मोह,निद्रा एवं आलस्य आदि केवल व्यभिचारि भाव में ही वर्त्तमान है। किन्तु वहाँ पर धन-जन आदि जन्य विषाद एवं दैन्य अति दुःखादि जन्य, श्रम, अज्ञान जनित मोह, तमोजनित निद्रा एवं श्रमातिशय्य जन्य आलस्यादि विद्यमान नहीं है ॥३८॥

यदीय योषिज्जन-सौभगीय शोभाति शोभात् श्रुतयोऽन्वयुस्ताः ।
यन्माधुरीं वीक्ष्य रमा मुमोह व्रजस्य तस्यास्तु किमत्रवर्ण्यं ।।४०

वृक्षान् सामान्य शीला जानन्ति । अत: हेतोर्व्रजस्य का सम्पत् वाच्या न कापीत्यर्थ: ।।३९।।

यदीय योषिज्जनानां सौभाग्यजन्यशोभातिशयस्य लोभात् । ता: प्रसिद्धा: श्रुतयो वेदा अन्वयु: । तासामनुगता बभूवु: । तथाहि बृहद्वामने । श्रुत्युक्ति: । कन्दर्प कोटि लावण्ये त्वयि दृष्टे मनांसि न: । कामिनी भावमासाद्य स्मरक्षुब्धान्यसंशय: यथा त्वल्लोक वासिन्य: कामतत्त्वेन गोपिका: । भजन्ति रमणं मत्त्वा चिकीर्षा जनिन स्तथा इति । तासामुपनिषदां प्रार्थनानन्तरं श्रीकृष्ण वाक्यं, दुर्लभो दुर्घटश्चैव युष्माकं सुमनोरथ: । मयानुमोदित: सम्यक् सत्यो भवितुमर्हतीति । तथा पाद्मे सृष्टि खण्डे । गायत्री च गोपीत्वं प्राप्तेत्याख्यायते यथा गोपेषु भगवद्वर: । युष्माकन्तु कुले चाहं देव कार्यार्थसिद्धये । अवतारं करिष्यामि मत्कान्ता तु भविष्यतीति । श्रुति र्यथा । यत्र

उस श्रीवृन्दावन में कामधेनु समूह भी सामान्य गौ रूप में कल्पवृक्ष समूह भी सामान्य वृक्षरूप में एवं चिन्तामणि समूह भी सामान्य शिला रूप में प्रतीयमान हैं । अतएव व्रज की वह अनुपम सम्पद् के मध्य तुम्हारे इस प्रकार मनोरथ अत्यन्त दुर्ल्लभ व दुर्घट होने पर भी मैं अनुमोदन कर रहा हूँ । तुम्हारी यह वासना अचिरकाल में फलवती हो । वृन्दावनीय सम्पद् क्या वर्णनीय है ? अर्थात् सब ही वर्णनातीत हैं ।।३९।।

श्रीवृन्दावन में व्रजसुन्दरीगण के सौभाग्य जनित ऐसी शोभा है, जिस शोभा के लोभ से प्रसिद्ध श्रुति अर्थात् वेद समूह भी उनके अनुगत हुए थे । यामल में श्रुतिगण की उक्ति इस प्रकार है । हे कृष्ण ! तुम्हारे कन्दर्प कोटि लावण्य का दर्शन कर हमारे मन

यथा त्वल्लोक वासिन्य इत्यनेन चिकीर्षाजनिनस्तथा इत्यनेन व्रजसुन्दरीणामानुगत्यं वेदेषु स्फुटमेव। श्रीभागवते वेद स्तुतौ च। स्त्रिय उरगेन्द्र भोग भुजदण्ड विषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रि सरोज सुधा इत्यत्र उरगेत्यनन्तरं वयमपीत्यपि कारेण स्वेभ्योऽपि व्रज सुन्दरीणामादृतत्वं व्यञ्जनया स्वेषां तासानुगत्यञ्च दर्शितम्। रमालक्ष्मी यासां माधुरीं वीक्ष्य मुमोह एव तासामानुगत्या भावात् श्रीकृष्णस्य तादृश प्रसादं न प्राप। तथाहि दशमे यद्वाञ्छया श्रीर्ललना चरत्तपइति। नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरते: प्रसाद

स्त्री भावापन्न होकर स्मर पीड़ित हो रहे हैं एवं वृन्दावन-वासिनी गोपिकागण जिस प्रकार प्रेम-तत्त्व के साथ तुम्हारा भजन करती हैं, हम सब भी उस भाव से तुम्हारे साथ रमण करने की इच्छुक हैं।

श्रुतिगण की इस प्रकार प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—होगा। पद्म-पुराण में उक्त है, गायत्री गोपित्व प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण कहे थे, देवतागण के कार्य सिद्धि के निमित्त मैं तुम्हारे गोपकुल में अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय तुम सब मेरी कान्ता होगी अतएव व्रजसुन्दरीगण के आनुगत्य वेद में परिस्फुट है इससे स्पष्टीकृत हुआ है। श्रीभागवत की वेद स्तुति में उक्त है 'स्त्रिय उरगेन्द्र भोग भुज दण्ड विषक्त धियो वयमपि ते समा: समदृशोऽङ्घ्रि सरोज सुधा', इस स्थल में 'वयमपि' इस वाक्य में अपि शब्द द्वारा अपनी अपेक्षासे व्रजसुन्दरीगण का अधिक आदृतत्व सूचित हुआ है। सुतरां इससे गोपिगण के निकट श्रुतिगण का आनुगत्य प्रदर्शित हुआ है।

श्रीवैकुण्ठाधीश्वरी श्रीलक्ष्मी देवी भी व्रजरामागण की माधुरी दर्शन कर विमुग्धा ही हैं। इसलिए उन सबके आनुगत्य का अभाव से लक्ष्मी श्रीकृष्ण का तादृश अनुग्रह प्राप्त हो न सकी।

अतएव श्रीलक्ष्मी देवी भी जब व्रजसुन्दरीगण की भाँति सौभाग्य की कामना से तप किये थे तब उनकी व्रजधाम प्राप्ति का

यत्रैव शुद्धप्रणयस्वभावा
प्रेम्नैव जानन्ति परं स्वबन्धुन् ।
लोकोत्तरा लोकवदेव तञ्च
स्वं स्वञ्च तत्रास्ति न किं विचित्रम् ॥४१॥

इत्याभ्यां तदर्थतपश्चरणं तत् प्राप्त्यभाव दृष्टौ । तस्य व्रजस्यात्र किं वर्ण्यमस्तु न किमपीत्यर्थः, सौभाग्य शोभा माधुर्य्यादिकं । तदपि स्वजन्म साफल्यार्थं दिग् दर्शनार्थं मनन्यगत्या च यथामतिना किञ्चिद्वर्ण्यते ॥४०॥

यत्र व्रजलोके एव न त्वन्यत्र । शुद्ध प्रणय एव स्वभावो येषां ते व्रज जनाः परं ब्रह्म श्रीकृष्ण स्तं स्वबन्धुमेव जानन्ति । परं केवल मिति वा । तथाहि । श्रीभागवते, गूढ़ं परब्रह्म मनुष्यलिङ्गमिति । अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्द गोप व्रजौकसां । यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनमिति । तद्भूरिभाग्यमिहजन्म किमपटव्यामित्यादिना आसांमहो चरणरेणु जुषामहं स्यामित्यादिना ब्रह्मोद्धवाभ्यां यत्र तृणादि जन्म प्राप्ति पूर्वकं येषां चरण धूल्यभिषेकं प्रार्थ्यते ते लोको-

---

अभाव ही सूचित हुआ है । इस प्रकार व्रज भूमिकी वर्णना और क्या हो सकती है तथापि स्वीय जन्म सफल करने के लिए दिग् दर्शन मात्र यथामति किञ्चित् वर्णन करूँगा ॥४०॥

एकमात्र व्रजलोकमें ही शुद्ध प्रणय स्वभाव सम्पन्न व्रजबासिगण परमब्रह्म श्रीकृष्ण को केवल निज बन्धु रूपमें जानते हैं । श्रीभागवत में वर्णित है–अहो ! नन्दगोप आदि व्रजवासिजन का कैसा अनिर्वचनीय भाग्य है । परमानन्द स्वरूप सनातन पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण जिनके मित्र हैं ।

ये सब प्रमाण से ब्रह्मा एवं उद्धव श्रीवृन्दावन में तृणादि जन्म लाभकर जिन सबकी चरण-धूली से अभिषेक की प्रार्थना किये थे । यह व्रजजनगण श्रीकृष्ण को सामान्य लोकवत् मानते हैं । और भी व्रजजन समूह प्रत्येक ही अपने को प्राकृत लोक के समान मानते

गुणास्तुते प्राकृत धर्म शून्या दोषा अपि स्यु रस एव मान्याः ।
नन्दव्रजे कौतुकमेव सर्वं खर्वं विधत्ते त्रिगुणोऽथगर्वम् ॥४२॥

स्मृतीतिहासासाख्य पुराणवेदे
सन्ति प्रमाणानि परं त्विहास्य ।
त्रैकालिकोपासकलोक साक्षात्
कारात् सदेहक्स्थितिरेवनित्या ॥४३॥

त्तरा व्रजजनः तं श्रीकृष्णं लोकवदेव जानन्ति नतु परब्रह्म तथा। सर्वे लोकोत्तरा व्रज जनाः लोकवत् प्राकृत लोकवत् स्वं स्वञ्च प्रत्येक मामानञ्च जानन्ति। तत्र किं विचित्रं नास्ति अपितु सर्वमद्भुतं तत्रैवास्ति ॥४१॥

ते प्रसिद्धा दया धर्म सौन्दर्य वैदग्ध्यादयो गुणाः। श्रीकृष्णैक तात्पर्यतया प्राकृत धर्मा ये ऐहिकामुष्मिक भोगादि स्पृहा स्तद्रहिताः दोषा अपि चौर्य्योपपत्यादयोऽपि वात्सल्य मधुरादि रसे मान्या एव स्युः, नतु निन्दा इत्यर्थः। अतो नन्दव्रजे सर्वं कौतुकमाश्चर्य मेव। यत्र त्रिगुणः त्रयाणां गुणानां कार्यः समाहारः, स्वधर्म परित्यागानन्तरं गर्वमभिमानं खर्वं विधत्ते ॥४२॥

स्मृत्यादिषु इहलोके अस्य पूर्वोक्तस्य प्रमाणानि सन्ति त्रिकाले

हैं, इसमें विचित्रता कुछ भी नहीं है। परन्तु वहाँ पर सब कुछ ही परमाद्भुत हैं ॥४१॥

वहाँ पर गुण अर्थात् प्रसिद्ध दया-धर्म-सौन्दर्य-वैदग्ध्यादि श्रीकृष्णैक तात्पर्य हेतु, प्राकृत धर्म अर्थात् ऐहिक पारत्रिक-भोगादि स्पृहा एवं दोष अर्थात् चौर्य्य, औपपत्यादि भी वात्सल्य एवं मधुरादि रस में समादृत हैं, सुतरां निन्दनीय नहीं हैं। सुतरां नन्दव्रज के सब कुछ ही अद्भुत हैं। यहाँ तक वहाँ पर सत्त्व, रज, तम, प्रभृति सम्भूत गुण त्रय भी स्वधर्म परित्याग पूर्वक अभिमान शून्य अवस्था अवस्थान करते हैं ॥४२॥

नित्यैव सर्वा यदि कृष्णलीला तथाप्यनित्यैव मतापि कैश्चित् ।
अदेयतातोऽतिरहस्यतात स्वस्येच्छयेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।।४४

प्रलयस्य पूर्वे भाविप्रलयस्य पश्चात् सृष्टि समये च उत्पन्नाः त्रैकालिका ये गोपाल मन्त्रोपासका लोका स्तेषां साधनसिद्धानां साक्षात् कारात् सदा ईदृक् स्थिरिरेव नित्या नित्य पद वाच्या । यद्वा । त्रैकालिक भक्तानां साक्षात् कारात् नित्या इदृक् स्थिति नित्या या लीलायुक्त पिता माता सखा प्रेयस्यादिभिः सह भगवतः स्थितिः सैव प्रमाणमिति ।।४३।।

यदि सर्वा कृष्णलीला नित्यैव तथापि सा अनित्यैव कश्चिदुच्यते इत्यादि मता सम्मता, तत्र कारणं तस्य भगवत इच्छयैव इति तज्ज्ञा भक्तितत्त्वज्ञा वदन्ति । इच्छायाः हेतु स्तेषामदेयत्वादति रहस्यत्वाच्च ।।४४।।

श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि में पूर्वोक्त वाक्यका यथेष्ट प्रमाण विद्यमान है । परन्तु प्रलय के पूर्व में भविष्यत् प्रलय के बाद एवं सृष्टि समय में इस त्रिकाल में ही गोपाल मन्त्रोपासक साधन सिद्धगण का साक्षात्कार होने के कारण सर्वदा ही उन सबकी एतादृशी स्थिति नित्य रूप में गण्य होती है । पक्षान्तर में त्रैकालिक भक्तगण के साक्षात्कार से नित्य लीला युक्त माता-पिता सखा प्रेयस्यादि के साथ श्रीभगवान् की नित्य स्थिति भी प्रमाणित हुई है, फलतः तीनकाल में ही भगवान् की लीला एवं भक्तगण भी लक्षित होते हैं, तज्जन्य वह नित्य पदवाच्य है । श्रुति स्मृति पुराणादि में इसका सुस्पष्ट प्रमाण है ।।४३।।

यद्यपि कृष्णलीला समूह नित्य हैं, तथापि कतिपय व्यक्ति उसको अनित्य कहते हैं, भक्ति तत्त्वज्ञ व्यक्तिगण कहते हैं अदेयत्य व अति रहस्यत्व निबन्धन श्रीभगवान् उन सब व्यक्ति को स्वीय लीला

यत्रैव वात्सल्य रसोऽस्तिमूर्त्तः
शरीरधारीव विशुद्ध सत्त्वम् ।
सौभाग्यसारो निजराजधान्यां
श्रीनन्दनामा-व्रजराजराजः ॥४५॥

श्रीकृष्णपित्रे पितृभावभावं जानन्ति सर्वे स्वपितृ स्वभावम् ।
श्रीनन्दराजं व्रजमध्यराजं सदेकरूपञ्च सदेक रूपम् ॥४६॥

यत्र व्रजलोके शरीरधारीव वात्सल्य रसः मूर्त्तः मूर्त्तिमानस्ति कीदृशः? विशुद्ध सत्त्वम् अप्राकृतं सत्त्वमयः। सौभाग्येऽस्ति सारोयत्र स एव क स्तत्राह। निज राजधान्यां श्रीनन्दनामा कीदृशः? व्रजः राजिराजत इति व्रजराजिः। यद्वा नन्दनामा निज राजधान्यां मूर्त्तो वात्सल्य रसोऽस्ति। शरीरधारीव अन्यो यथा शरीरधारी तथा वस्तुतस्तु विशुद्धसत्त्वम् ॥४५॥

श्रीकृष्णस्य पित्रे सर्वे जनाः पितरिभाव इव भावं यत्र तथा भूतं जानन्ति, तथाच व्रजस्यजनाः श्रीनन्दं पितृभावं कुर्वन्ति। अद्यापि नन्द ग्रामस्था बालवृद्धवनिताः श्रीनन्दं वावाजीत्याख्यया पितृत्वेन

नित्य रूप से जानने की शक्ति प्रदान नहीं किये हैं, इसलिए वे सब नहीं जान सकते हैं, किन्तु उन सबको प्रज्ञा शक्ति आपने क्यों नहीं दी है, यह अत्यन्त रहस्यकर वृत्तान्त है। लीलामय की इच्छा ही इसका कारण जानना होगा ॥४४॥

उस व्रजलोक में वात्सल्य रस, प्राकृत-शरीरधीरी के समान मूर्त्तिमान् रूप में विराजित है, उस वात्सल्य मूर्त्ति प्राकृतवत् प्रतीत होने पर भी विशुद्ध सत्त्व अर्थात् अप्राकृत सत्त्वकी है। जिसमें इस प्रकार सौभाग्य की पराकाष्ठा विद्यमान है, उसमें ही श्रीनन्द नामक व्रजाधिराज स्वीय राजधानी में ही विराजित हैं ॥४५॥

यस्यास्ति गेहेसहधर्मचारिणो
चित् कल्पवल्लीव शरीर धारिणी
वात्सल्य सम्पत्तिरसस्वरूपिणी ।
यस्याः फलं श्रीभगवान् स्वयं मणिः ॥४७॥

सम्बोधयन्ति। कीदृश ? स्वपितृ स्वभावः स्वस्मिन् बालकस्य पितुरिव स्वभावं यस्य तम् । सदैक रूपं सदैक स्वभावं देहादीनामेकाकारैव स्थितिः सच्चासौ एकरूपश्च तं नित्यमित्यर्थः ॥४६॥

सहधर्मचारिणी गृहिणी चित् कल्पलता इव यस्य नन्दस्य गेहेऽस्ति शरीरधारिणी चित्कल्पवल्ली चिन्मयशरीरधारिणी । परमार्थ विचारे वात्सल्य एव सम्पत्तिरूपो रस स्तत् स्वरूपिणी। तस्या अद्भुत लतायाः धर्ममाह यस्याः फलं स्वयं भगवान् श्रीकृष्णः स एव मणिः ॥४७॥

श्रीकृष्ण के पिता व्रजेश्वर श्रीनन्दराज हैं, स्वपितृ स्वभाव अर्थात् मैं बालक का पिता हूँ। यह स्वभाव विशिष्ट एवं सर्वदा ही इस प्रकार उनका एक ही स्वभाव है, अपि च उनके देहादि सर्वदा एक ही आकार में अवस्थित हैं, अर्थात् देह-देही भेद शून्य होकर नित्य शुद्ध सत्त्व में अवस्थित हैं। इसलिए समस्त व्रजजन श्रीकृष्ण के पिता श्रीनन्दराज के प्रति पितृभाव प्रकाश करते हैं यहाँ तक कि व्रजवासिगण भी श्रीनन्द के प्रति पितृभाव रखते हैं, अद्यापि नन्द-ग्रामस्थ आबाल वृद्धवनिता सब व्यक्ति "बाबाजी" आख्या से पितृ भाव से सम्बोधन करते हैं ॥४६॥

श्रीनन्दराज की सह धर्म्मिणी चिन्मयी कल्पलतिका के समान शरीर-धारिणी हैं एवं परमार्थ विचार में वात्सल्य-सम्पत्ति रूप रस स्वरूपिणी हैं एवं परमार्थ विचार में वात्सल्य-सम्पत्ति रूप रस स्वरूपिणी हैं, अद्भुत चित् कल्प लता का फल स्वयं भगवान् श्रीकृष्णमणि हैं ॥४७॥

या श्रीयशोदा जगती यशोदा
श्रीकृष्ण वात्सल्यरसैक मोदा ।
तमेव पाशेन बबन्ध रोषात्
तत् प्रेमचित्रं ववृधेऽतितोषाम् ॥४८॥

यत्रासते गोपगणा अगण्याः
केचिद् व्रजेशस्य स पिण्डबन्धाः ।
सम्बन्धगन्धा अपि केऽपि तेषां
स्नेहानुबन्धा अखिलामुकुन्दे ॥४६॥

सह धर्मचारिण्या नाम ग्रहण पूर्वक सौभाग्यातिशयं कथयति या यशोदा नाम्नी इयं जगती धन्या यत्र विचित्र लीला श्रीकृष्णमाता श्रीयशोदा वर्त्तत इत्याकारकं जगत्या यशोददातीति सा। श्रीकृष्णस्य वात्सल्य रसे एकः केवलं मोद आनन्द यस्या सा तं तथाभूतं श्रीकृष्ण मेव पाशेन रज्जुना बबन्धेत्याश्चर्य्यं तत्रापि रोषादित्याश्चर्यम् । तत्तस्या बन्धनात् अथवा तस्या यशोदायाः। यद्वा तत् तयो र्यशोदा श्रीकृष्णस्य रति तोषाच्चित्रं प्रेम ववृधे। इति तु तस्मादप्यद्भुतम्। यद्वा प्रेम ववृधे इति चित्रम् ॥४८॥

यत्रागण्या गोपगणा आसते, केचिद् गोपा व्रजेशस्य सपिण्ड

श्रीनन्दराज की सह धर्म्मिणी का नाम श्रीयशोदा है, आप विचित्र लीलामय श्रीकृष्ण की माता श्रीयशोदा नाम से विराजित हैं। इस रूप से ही जगत् में यशोदान करती है, केवल कृष्ण वात्सल्य रस में ही उनको आनन्द है, इस वात्सल्य रस के गुण से ही आपने श्रीकृष्ण का रज्जुद्वारा बन्धन किये थे, यह आश्चर्य का विषय है और भी आश्चर्य्य विषय है कि अपने क्रोधावेश में ही श्रीकृष्ण को बन्धन किये थे। अथच उस बन्धन के कारण श्रीयशोदा व श्रीकृष्ण का सन्तोष का उदय होने के कारण प्रेम वर्द्धित हुआ था ॥४८॥

सर्वेसतां धर्म विशेष मूर्त्तय:
पत्न्योऽपि तेषामिव भक्तिवृत्तयः ।
पुत्राश्च केषाञ्चन कृष्णसख्यका:
कन्याश्च केषाञ्चन कृष्ण कामका: ॥५०॥

बन्धा ज्ञातयः । तेषां व्रजेशादीनां सम्बन्धस्य गन्धोऽस्ति, येषु तेऽखिला गोपा मुकुन्दे स्नेहानुबन्धा: ॥४९॥

सर्वे गोपा: सतां साधूनां ये धर्म विशेषा: प्रेमादय: तन्मय मूर्त्तय: । तेषां गोपानां पत्न्योऽपि भक्तेर्वृत्तय इव । तथा च । गोपानां सर्वेन्द्रिय व्यापारा: यथा प्रेममया: तथा तत् पत्नीनामपि ज्ञया: । तथाहि सिद्ध भक्तस्य लक्षणम् । अविज्ञाताखिल क्लेशा: सदा कृष्णाश्रित क्रियाः । सिद्धा स्युरिति । कृष्ण: सखा येषां ते कृष्णे कामो यासां ता: ॥५०॥

उस व्रजधाम में अगण्य गोपगण विद्यमान हैं, उनके मध्य में कोई-कोई व्रजेश्वर श्रीनन्द के सपिण्ड बन्ध हैं, अर्थात् ज्ञाति हैं और कोई-कोई सम्बन्धगन्धा हैं अर्थात् उन सबके साथ किञ्चित् गन्धमात्र सम्बन्ध है । ये सब गोप ही श्रीकृष्ण में स्नेहानुबन्ध हैं, अर्थात् वात्सल्य भाव से श्रीकृष्ण के साथ स्नेह बन्धन करते हैं ॥४९॥

उन गोपगण, साधुगण के धर्मविशेष की मूर्त्ति स्वरूप हैं, अर्थात् साधुगण के विशेष धर्म प्रेमादि हैं, वे सब उस प्रेमादि की प्रकट मूर्त्ति हैं, उन सबकी पत्नीगण भी भक्ति की वृत्ति स्वरूपा हैं । फलतः गोपगण की सर्वेन्द्रिय के व्यापार जैसे प्रेममय है, उन सबकी पत्नी-गण के भी उस प्रकार जानना होगा । सिद्ध भक्तका लक्षण यह है– 'अविज्ञाताखिल क्लेशा: सदा कृष्णाश्रित क्रिया अर्थात् जो सब व्यक्ति किसी प्रकार दुःख का परिज्ञान नहीं रखते हैं एवं जिन सबकी क्रिया सर्वदा ही कृष्णाश्रित है, वे सब ही सिद्ध भक्त नाम से अभिहित होते

ये तत् सखातत् सवयोवंपुष्का
गुणैश्च सर्वैरपि तत् समानाः ।
नित्यं कुमाराः सनकादिवत्ते
तच्चित्ततायाः किमशक्यतास्ते ॥५१॥
केचित् सखायोऽतिरहस्य-मान्या
रहस्य सेवाखपि केऽपि धन्याः ।
सखी समानाः सुबलोज्ज्वलाद्याः
सदोज्ज्वला उज्ज्वलदृष्टिमाढ्याः ॥५२॥

ये गोपवालकास्ते तस्य कृष्णस्य सखास्ते तस्य कृष्णस्य समान वयो वपुंसि च येषां तादृशाः भवन्ति । सर्वे गुंणैः श्रीकृष्णसमानाः । सनकादयो यथा सदैव पञ्च वर्षीय बालक तुल्या स्तथा ते गोपबालकाः नित्यं कुमारा कृष्ण समान वयस्काः आकृतयो गुणाश्च भवन्ति । तेषु श्रीकृष्णे या चित्तता चित्तस्य भावः। तस्यां किमशक्यतास्ते अपितु सर्वं कर्त्तुं समर्था भवन्ति मथुरास्थ वृद्धाअपि श्रीकृष्ण दर्शनेन युवानो बभूवुः । किमुत तच्चित्ता इति ॥५१॥

केचित् सखाय: अतिरहस्येनातिरहस्य व्यापारेण मान्याः

हैं, उक्त गोपगण के किसी-किसी के पुत्र श्रीकृष्ण के सखा हैं और किसी-किसी की कन्या श्रीकृष्ण प्रेमवती हैं ॥५०॥

जो सब गोप बालक श्रीकृष्ण के सखा हैं, वे सब ही श्रीकृष्ण के समान वयस एवं देह विशिष्ट हैं एवं सकल गुण में ही कृष्ण के समान हैं। सबके इस प्रकार कृष्ण समवयस्कतादि कैसे सम्भव है ? उत्तर यह है कि–श्रीकृष्ण में तन्मयता के कारण ही वैसा सम्भव है। मथुरास्थ वृद्धगण श्रीकृष्ण दर्शनसे युवक के समान हो गये थे। सुतरां तद् गतचित्त वाले के वैसा होगा, इसमें सन्देह क्या है ? ॥५१॥

याः कृष्ण कान्ताः सकला पदाब्ज-
नखाशु कोटिजित कोटि चन्द्राः ।
सौभाग्य सारातुल कीर्त्तिपारा
वारोर्म्मिवाराप्लुत वेद वाराः ॥५३॥

आदरणीयाः । केऽपि सखायः रहस्यं सेवासु दूत्यादिषु अपिशब्दादन्य त्रापि नियुक्ता अतएव धन्याः । तानेवाह सुबलोज्ज्वलाद्याः सखीनां ललितादीनां समानाः। सदा सनकादि वत् कामादि विकार राहित्यात् सदोज्ज्वला सदा मालिन्यादि रहिताः । तथाभूता, भूत्वापि । पञ्च वर्षीय बालकानामिव सनकादीनां कामचेष्टादि रहितोऽपि यथा काम विषयक ज्ञानवन्तस्तथैव । उज्ज्वलरसे दृष्टिमाढ्या युक्ताः ॥५२॥

पदाब्जयोरेक नखस्य योऽशुः किरण स्तस्य कोट्या अग्रभागेन जितः कोटिचन्द्रो याभिस्ताः । सौभाग्य साराश्च ता अतुल कीर्त्ति पारावारस्य समुद्रस्योर्म्मीणां वाराभि राप्लुताः व्याप्ताः वेद वाराः वेदसमूहाः यासां ताश्चेति । निवहावसरे वार इत्यमरः ॥५३॥

कोई-कोई सखा अति रहस्य व्यापार के लिए माननीय हैं, कोई-कोई सखा दूत्यादि रहस्य सेवा कार्य में एवं अन्यत्र भी नियुक्त होने के कारण वे सब धन्य हैं । सेवा परायण सखागण के मध्ये सुवल एवं उज्ज्वलादि, ललितादि सखीगण के समान हैं, सनकादिवत् कामादि विकार रहित के कारण वे सव सर्वदा मालिन्यादि विरहित हैं । पञ्चम वर्षीय बालकगण के समान सनकादि काम चेष्टादि रहित होकर भी जैसे काम विषयक ज्ञानवान् हैं, उसी प्रकार वे सब भी उज्ज्वल रस दृष्टि युक्त हैं ॥५२॥

उन सब कृष्ण कान्तागण के चरण-कमल की एक ही नख की जो कान्ति है, उसके अग्रभाग से कोटि चन्द्र भी पराजित होते हैं एवं

याभिः स्वयं प्राप्तवर प्रसाद-
लेशस्य योग्या न बभूवलक्ष्मीः ।
नायं श्रियोऽङ्ग इति यन्निरुक्तं,
श्रीमत्शुकेनापि महापुराणे ॥५४॥

याभिः कान्ताभिः स्वयं प्राप्तवह प्रसादस्य श्रीकृष्णादनायास प्राप्तो नितान्तरतेः प्रसादस्य यो लेशस्तस्य योग्या लक्ष्मीः न बभूव । प्रसादाभावे प्रमाणमाह । महापुराण श्रीभागवते श्रीमत् शुकदेव गोस्वामिनापि यद् यस्मान्निःशेषेण उक्तम् । उक्तं पद्यं यथा । नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरते प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्ध रुचां कुतोऽन्याम् रासोत्सवेऽस्य भुजदण्ड गृहीतकण्ट लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजसुन्दरीणामिति ॥५४॥

उन सबकी सौभाग्य सार रूप में जो अतुल कीर्त्ति समुद्र है, उसके तरङ्ग निचय के द्वारा श्रुति समूह भी परिप्लुत होती हैं ॥५३॥

कृष्ण कान्तागण श्रीकृष्ण से अनायास ही जो प्रसाद लाभ करती हैं, लक्ष्मी देवी उस प्रसाद का लेशमात्र प्राप्त करने की योग्या नहीं होती हैं,श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजी ने इस विषयका वर्णन इस प्रकार किये हैं । 'नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः' अहो ! गोपीगण के प्रति श्रीकृष्ण का अनुग्रह अतीव आश्चर्यजनक है । रासोत्सव में श्रीकृष्ण के भुजदण्ड द्वारा आलिङ्गित कण्ठा होकर गोपीगण तदीय प्रसाद लाभ द्वारा जैसे मनोरथका अन्त प्राप्त हुई थीं,वक्षःस्थलस्थिता एकान्तरता कमला भी उस प्रकार प्रसाद प्राप्त नहीं हुई है । परन्तु पद्मगन्धा एवं पद्मकान्ति देवाङ्गनागण के प्रति भी उस प्रकार अनुग्रह नहीं हुआ था । ऐसा कि भू-लीला में जो सब परम प्रेमयुक्ता है, उनके प्रति भी वैसी प्रसन्नता नहीं हुई अन्य नारीगण के प्रति प्रसाद की वार्त्ता ही क्या है ॥५४॥

यासां न कापि प्रभुनापिशेके त्यक्तुं विलासाय कनीयसी या ।
यावत्य एव व्रज योषितस्ता स्तावन्तमात्मानमतः स चक्रे ।।५५
यासां गुणैरेव गृहीत चेता याभिः स रेमे भगवान् स्वयं यः ।
तथैव तस्यैव गुणैस्तमात्मा रामा भजन्ते प्रमदातुचिताः ।।५६

प्रभुना सर्वसमर्थेनापि श्रीकृष्णेन यासां मध्ये या कापि कनीयसो कनिष्ठा व्रजसुन्दरी तां विलासाय विलासार्थं त्यक्तुं न शेके। अतः कारणात् यावत्य एव व्रज योषितस्तावन्तमात्मानम् आत्मन स्तावत् प्रकाशं स श्रीकृष्णश्चक्रे। तथाहि श्रीदशमे। कृत्वा तावन्त मात्मानं यावती गोंपयोषित इति ।।५५।।

यासां व्रजसुन्दरीणां गुणैःप्रेमवत्त्वादि गुणैः गृहीत चेताः सन् यः स्वयं भगवान् स प्रसिद्धः श्रीकृष्णः ताभिः सह रेमे। तथैव आत्मा रामाः गोपाः तस्य श्रीकृष्णस्य गुणैरेव आत्मा रामा अपि प्रमदाश्च ताः आतुचित्ता गृहीतचित्ताश्च ता स्तं श्रीकृष्णं भजन्ते ।।५६।।

श्रीकृष्ण प्रभु अर्थात् सर्वशक्तिमान् होकर भी व्रज-सुन्दरीगण के मध्ये जो सर्वकनिष्ठा है, क्रीड़ा विलास के निमित्त उसको भी त्याग करने में समर्थ नहीं है। इस कारण से ही यद्वधि उक्त वनितागण की विद्यमानता है (तब तक) तावत् श्रीकृष्ण भी आत्म प्रकाश करते हैं। श्रीभागवत् के दशम में 'कृत्वा तावन्तमात्मानं' इत्यादि श्लोक ही प्रमाण है ।।५५।।

उक्त व्रजसुन्दरीगण के प्रेमवत्त्वादि गुण से चित आकृष्ट होने के कारण जैसे श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् होकर भी उन सबके साथ आनन्द क्रीड़ा करते हैं, उस प्रकार आत्मारामा एवं आनन्दमयी होकर भी श्रीकृष्ण गुण से उन सबके चित्त आकृष्ट होने के कारण श्रीकृष्ण का भजन करती हैं ।।५६।।

तासां शिरः सद्गुण रत्न मालिका
प्रेमान्धयाराम सुवर्ण केतकी ।
माधुर्य्य धाराधर विद्युदुद्यता
विद्योतते श्रीवृषभानुनन्दिनी ॥५७॥
आनन्द चन्द्रोदित कौमुदी या
या श्रीमोहनस्यापि सुमोहन श्रीः ।
सौन्दर्य्य नाम्नो निकषोपलस्य
सुवर्णरेखा वृषभानुकन्या ॥५८॥

तासां शिरःसु सद्गुणैः स्वरूप मालिका इव रत्न मालारूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी विद्योतते। कीदृशी प्रेमान्धयेति। सौन्दर्य्याद्यशे यथारामे पुष्पोद्याने सुवर्ण केतकी यथा पुष्पानां मध्ये सौगन्ध्येन यथा केतकीनां मध्ये उत्तमा तथा प्रेमवतीनां मध्ये तथैषा प्रेमासञ्जया-त्युत्तमा । प्राकृताप्राकृतमाधुर्य्यधाराधरे मेघे विद्युति उद्यता उदयप्राप्रा विद्युद्रूपा। तथाच विद्युत् यथा मेघानांशोभा जनिका तथेयं माधुर्य्याणाम् ॥५७॥

पुनः कीदृशी ? राधा, आनन्दाकार चन्द्रादुदिताकौमुदी ज्योत्स्ना रूपा । श्रीमोहनस्य श्रीकृष्णस्य श्लेषेण श्रीर्लक्ष्मीः तां

श्रीवृषभानु-नन्दिनी ही उक्त व्रजसुन्दरीगण की शिरोमणि हैं, आप सद्गुण समूह की रत्नमाला स्वरूप हैं। परन्तु पुष्पोद्यान में पुष्प समूह के मध्ये सौगन्ध में जैसे केतकी ही श्रेष्ठ है एवं केतकी के मध्य में सुवर्ण केतकी ही सर्वोत्तमा है, उस प्रकार सौन्दर्य्यादि अंश में प्रेमवतीगण के मध्ये व्रजरामागण ही श्रेष्ठ हैं एवं उन सबके मध्य में प्रेमान्धता के कारण श्रीभानुनन्दिनी ही अत्युत्तमा है। विद्युत् जिस प्रकार मेघ की शोभा-जनिका है, उस प्रकार आप श्रीकृष्ण के अप्राकृत मेघ में उद्दीप्त विद्युत् स्वरूपा हैं ॥५७॥

लावण्य पाथोनिधि सार सम्पत्
कला कलापाकरभूमिरेका ।
गुणाख्यरत्नौघखनिः प्रसिद्धा
श्रीराधिका श्रीव्रजचन्द्रकान्ता: ॥५६॥

मोहयति यः श्रीकृष्णस्तं मोहयति श्रीःकान्ति र्यस्याः सा। प्राकृता प्राकृत सौन्दर्य्यं नामा निकषोषलस्य स्वर्ण परीक्षक कृष्णवर्ण प्रस्तरस्य या सुवर्णरेखा रूपा स्वर्ण परीक्षक पाषाणेषु यथा स्वर्णरेखा शोभते तथासौन्दर्य्येषु श्रीराधा किमुत सुन्दरीष्विति ॥५८॥

पूर्ववत् लावण्य समुद्रस्य सार सम्पत् महालक्ष्मी रूपा। कला कलापस्य वैदग्ध्य समूहस्य एका मुख्या केवला वा आकर भूमि उत्पतिस्थानरूपा । कारुण्यादि गुणाख्यरत्नसमूहस्य खनि उत्पादिका भूमिः ॥५९॥

उक्त वृषभानु कन्या, आनन्दचन्द्र की कौमुदी स्वरूपा हैं, रसराज कृष्ण ही आनन्द रूप चन्द्र हैं, वृषभानुनन्दिनी उस आनन्द चन्द्र की ज्योत्स्ना रूपा हैं, अर्थात् शक्ति और शक्तिमान् में अभेद के हेतु अपृथक् रूपा है। श्रीकृष्ण श्रीमोहन अर्थात् श्रीलक्ष्मी देवी को भी विमोहित करते हैं, किन्तु वृषभानुनन्दिनी की ऐसी मनोहर कान्ति हैं, जो श्रीमोहन श्रीकृष्ण को भी विमुग्ध करती है एवं जो प्राकृताप्राकृत निखिल सौन्दर्य के निकष-प्रस्तर में अर्थात् कष्टि पत्थर में (स्वर्ण परीक्षक का कृष्णवर्ण प्रस्तर विशेष में) विमल सुवर्ण-रेखा के समान शोभमान हैं, सुतरां वह वृषभानुनन्दिनी असमोर्द्ध सौन्दर्य्यं शालिनी हैं ॥५८॥

वह वृषभानुनन्दिनी ही श्रीवृन्दावन-चन्द्रमा श्रीकृष्ण की प्रियतमा श्रीराधिका नाम से प्रसिद्धा हैं। आप निखिल लावण्य

गौरी सहस्रादधिकापि गौरी
श्यामा तथापि श्रुतिषु प्रसिद्धा ।
सुरूपिणी याप्यसुरूपिणी च
सखी कदम्बस्य विभाति राधा ॥६०॥

केचित् परामेव वदन्ति लक्ष्मीं
लीलेति केचित् किल तान्त्रिकायाम् ।
आनन्दिनी-शक्तिरिति श्रुतीशाः
श्रीराधिकाभा व्रजचन्द्र-कान्ता ॥६१॥

गौरी सहस्रादपि या अधिका गौरी गोरवर्णं तथापि श्रुतिषु वेदेषु श्यामा प्रसिद्धा। अत्र विरोधाभासालङ्कारेण श्यामास्यान्नव यौवना इति स्तनौ तु कठिनौ यस्या श्यामा सा परिकीर्त्तिता इति च। सुरूपिण्यपि या विरोधाभासलङ्कारेण सखी कदम्बस्य सम्बन्धे असु प्राणस्तद्रूपिणी सती राधा भाति ॥६०॥

केचित्तान्त्रिकाः जना यां श्रीराधिकां परां लक्ष्मीं वदन्ति।

समुद्र की सार सम्पत् हैं, अर्थात् महालक्ष्मी स्वरूपा हैं, वैदग्ध समूह की एकमात्र उत्पत्ति स्थान रूपा एवं कारुण्यादि गुणरूप रत्न समूह की खानरूपा हैं ॥५९॥

श्रीराधा गौरी सहस्र की अपेक्षा से भी अधिक गौरवर्णा हैं, तथापि आप श्रुति में श्यामा नाम से प्रसिद्ध हैं। इस स्थल में विरोधाभास अलङ्कार से श्यामा शब्द से नव-योवना का बोध होता है, श्यामा का लक्ष्य इस प्रकार है– 'स्तनौ तु कठिनौ यस्या श्यामा सा परिकीर्त्तिता' अर्थात् जिनके स्तन युगल कठिन हैं, वह ही श्यामा नाम से अभिहित हैं, और भी आप सुरूपिणी होकर भी सखीगण सम्बन्ध में असु-रूपिणी हैं (असुप्राण, तत्रूपिणी) अर्थात् सखीगण के प्राण स्वरूप में प्रकाशित हैं ॥६०॥

यस्या वशे तस्य तु सर्वशक्तिः
सर्वेव लीला सकला-गुणाश्च ।
सौन्दर्य्यं माधुर्य्यं विदग्ध ताद्याः
सा राधिका राजति कृष्ण कान्ता ॥६२॥
यस्या लसन्मादन भाव वश्या
लीला रसास्वाद विशेष रस्याः ।
कृष्णस्य नित्या विलसन्त्यनन्ताः
सा राधिका राजतिकृष्णकान्ता ॥६३॥

केचित्तान्त्रिकाः जनाः श्रीराधिका लीलेति लीलाशक्तिरिति वदन्ति । श्रुतीशाः यां आनन्दिनी आह्लादिनी शक्तिरिति वदन्ति ॥६१॥

तस्य श्रीकृष्णस्य तु पुनः सर्वाशक्तिः सर्वा लीला सकला गुणाः सौन्दर्य्याद्याश्च यस्या वशे वशीभूताः सा ॥६२॥

यस्या लसन्मादनाख्यो महाभावस्य भेद विशेषो यो भावस्तस्य वश्या वशीभूताः । अतएव लीलारसास्वाद विशेषेण रस्या मधुराः श्रुतीशाः विलसन्ति सा राधिका तन्त्रोक्त श्रीराधिका-महिमादि आस्वादनीयाः । श्रीकृष्णस्य नित्या अनन्ता लीलाः सूचक बहूनि

तान्त्रिकजनगण व्रजेन्द्र-कान्ता श्रीराधा को परालक्ष्मी कहते हैं, कोई-कोई व्यक्ति उनको लीलाशक्ति कहते हैं एवं श्रुतीश्वरगण उनको ह्लादिनी शक्ति नाम से अभिहित करते हैं ॥६१॥

श्रीकृष्ण की सकल शक्ति, सकल लीला, सकल गुण एवं सौन्दर्य्य-माधुर्य्य-विग्ध्यादि जिनके वशीभूत हैं, उस श्रीराधिका ही श्रीकृष्ण की प्रियतमा प्रणयिणी रूप में विराजित हैं ॥६२॥

जिनकी शोभनीय मादनाख्य महाभावगत लीला समूह रसास्वाद विषय में अति मधुर है एवं श्रीकृष्ण सम्बन्ध में नित्य

यथैव सर्वैगु'ण रूप केली
माधुर्य्य पूरैरति पूर्ण एव ।
श्रीकृष्णचन्द्रः स तथैव रस्या
सा राधिका राजति राधिका सा ॥६४॥

प्रमाणानि सन्ति तेषु गौतमीय तन्त्रोक्तमेकमेव प्रमाणं सर्वं वक्तु प्रभवति। यथा तस्या मन्त्र कथने। देवी कृष्णमयी प्रोक्ताराधिका पर देवता। सर्वलक्ष्मीमयी सर्व कान्तिः भम्मोहिनी परा। ह्लादिनी सा महाशक्तिः सर्वशक्ति वरीयसी। तत् सारभूत रूपेयं इति तन्त्रे प्रकीर्त्तिता इति च सम्मोहिनी परेति ॥६३॥

यथैव स श्रीकृष्णचन्द्रः सर्वे गु'णादीनां पूरैः। यद्वा गुणादि माधुरीणां पूरै रतिशयै रतिपूर्णस्वरूप एव विराजितः। तथैव सर्वै गु'णादीनामतिशयैरतिपूर्णा सा राधिका राजति। सा कादृशी? रस्या सारात् सारभूता अधिका च ॥६४॥

अनन्त रूप में विलसित है, वह श्रीराधिका ही कृष्ण कान्ता रूप में विराजित हैं। तन्त्रमें श्रीराधा की महिमादि आस्वादनीय रूप कथित है एवं श्रीकृष्ण की नित्य अनन्त लीला सूचक अनेक प्रमाण भी हैं, तन्मध्ये गौतमीय तन्त्रोक्त एक ही प्रमाण समस्त प्रकाश करने में समर्थ हैं। जैसे 'देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका इत्यादि' श्रीराधादेवी देदीप्यमती परमासुन्दरी, कृष्णमयी-कृष्णात्मिका, पर देवता सर्व लक्ष्मीमयी अर्थात् निखिल ऐश्वर्य्य की अधिष्ठात्री व लक्ष्मी प्रभृति सर्व नारी की अधिश्वरी एवं सौन्दर्य्यमयी हैं, और भी आप जगन्मोहन के भी मनो-मोहिनी हैं, यह परा ठाकुराणी ही राधानाम से अभिहिता हैं। सकल शक्ति की वरीयसी जो ह्लादिनी-नाम्नी महाशक्ति हैं, श्रीराधा उसकी सारभूता हैं ॥६३॥

श्रीकृष्ण जिस प्रकार निखिल-गुण, रूप, क्रीड़ा एवं माधुर्य्याधिक

यस्या विशाखा ललितादयस्ताः
सख्यः प्रियरूप गुणैः समानाः ।
मानेन यस्या अपि याः समाना
या वीक्ष्य राधा निज शर्म वेद ॥६५॥

यस्याः सुहृत् पक्षतया प्रसिद्धा श्यामेति नामागुणतोऽपि या सा ।
यदीय सौहार्द्द कृते विधत्ते नित्यं प्रयत्नमति माधुरीभिः ॥६६॥

यस्या विशाखाद्या स्ता सख्य राधायाः रूपगुणैः समानाः यथा राधा याः रूपगुणादि स्तथा तासामित्यर्थः। मानेन मर्य्यादयापि याः सख्यः समानाः या सखी वीक्ष्य राधा निजशर्म्मं निजसुखं वेद। एतेन श्रीकृष्ण श्रीराधिका विशाखादीनां सर्वथा तुल्यत्वमायातम् ॥६५॥

स्वपक्षसखीमुक्ता सुहृत पक्षमाह। श्यामा इति नामयस्या सा यस्या राधायाः सुहृत् पक्षत्वेन प्रसिद्धा। या गुणतोऽपि गुणेनापि प्रसिद्धा। या यदीयसौहार्द्द कृते श्रीराधिका सौहार्द्दार्थं अतिमाधुरीभि र्नित्यं प्रयत्नं विधत्ते करोति ॥६६॥

से परिपूर्ण हैं, उस प्रकार श्रीराधिका भी गुण, रूपलीला आदि की पराकाष्ठा में परिपूर्णा हैं, इस प्रकार ही वह माधुर्य्य सारात्साराधिका श्रीराधिका विराजित हैं ॥६४॥

ललिता विशाखादि सखीगण भी उनकी प्रियसखी श्रीराधा के रूप गुण के तुल्य हैं, अर्थात् श्रीराधा के जैसे रूप गुण आदि हैं, उन सबके भी उस प्रकार रूप गुणादि हैं, मर्य्यादा में भी सखीगण श्रीराधा के ही समान हैं, एवं सखीगण को देखकर श्रीराधा स्वयं सुखानुभव करती हैं, इससे श्रीकृष्ण श्रीराधिका एवं विशाखादि सखीगण की सर्वथा तुल्यता परिव्यक्त हुई है ॥६५॥

स्वपक्ष सखीगण की बात कहकर सम्प्रति सुहृत् पक्ष सखी

याभ्यां ययोर्नाम विधाय नाना
शिल्पेन कल्प्याम्बर भूषणादि ।
संप्रेषितं यत् सहसा न वेद
श्रीकृष्ण चन्द्रोऽपि किमन्यवार्त्ता ॥६७॥

श्यामा अति माधुरीभिः सौहार्दार्थं यत्न करोतीत्युक्त मधुना राधाश्यामयोः परस्पर सौहार्द माधुरी दर्शयति। याभ्यां राधा श्यामलाभ्यां ययो राधाश्यामलयोः परस्परं नाम विधाय नाम कृत्वा नाना शिल्पेन कौशलेन कल्प्य निर्म्माय अम्बर भूषणादि स्व निकटे यत् सम्प्रेषितं। तद्वस्तु कया प्रेषितमिति श्रीकृष्णचन्द्रोऽपि सहसा न वेद। अनयोः सौहार्दस्य रीति यथा श्रीराधिका माल्याम्बरा दिकमत्यद्भूतं निर्म्माय श्यामला यथा न जानाति तथा सखिद्वारा श्यामलायाः नाम कृत्वा श्रीकृष्ण निकटे प्रेषयति। एवं श्यामलापि श्रीराधिका नामकृत्वा प्रेषयति। अत्र सहसापदेन पश्चात् विचारेण जानाति यथा इदं भूषणं न श्यामला कृतं, राधाकृतमेव ज्ञात्वा प्रीत्यर्थं श्यामा स्वनिकटेऽभिसारयति एव मन्यत्रापि ॥६७॥

गण के वृत्तान्त कहते हैं। जो श्रीराधा के सुहृद पक्ष हैं, उनका नाम श्यामा है, आप गुणसे अति प्रसिद्धा हैं एवं श्रीश्यामसुन्दर के साथ श्रीराधा के सौहार्द बन्धन के निमित्त अतिशय माधुरी के साथ नित्य यत्न करती हैं ॥६६॥

श्यामा अति माधुरी के साथ सौहार्द के निमित्त जो प्रयत्न करता है, वह पूर्वश्लोक में उक्त है, सम्प्रति श्रीराधा एवं श्यामला परस्पर के नाम से अर्थात् श्रीराधा श्यामला के नाम से एवं श्यामला श्रीराधा के नाम से विविध शिल्प नैपुण्य द्वारा वसन-भूषणादि श्रीकृष्ण के निकट प्रेरण करती है। वास्तविक यह सब वस्तु किसने भेजी हैं, श्रीकृष्णचन्द्र सर्वज्ञ होकर भी उसको सहसा जान नहीं सकते

प्रेम्णे प्रियस्यारमुपेक्षितं यत्
लोकेषु लज्जादि तदैव भूयः ।
प्रेम्नि प्रगाढ़े तदपेक्षणं ताः
कुर्वन्ति चित्रं किल कृष्णकान्ताः ॥६८॥

यत्रासते सात्वत शुद्धधर्मा मूर्त्ता इवोर्वी दिविषद्वरेण्याः ।
तद्धर्म मात्र प्रतिपादि वेद वक्तार एके रत पाञ्चरात्राः ॥६९

प्रियस्य कृष्णस्य प्रेम्णे प्रेमार्थमरं शीघ्रं यद् यदालोकेषु लज्जादि उपेक्षित त्यक्तं तदैव प्रेम्णि प्रगाढ़े सति तत्तस्य लज्जादेर पेक्षणमपेक्षां ताः कृष्ण कान्ताः कुर्वन्तीति चित्रमाश्चर्य्यम् ॥६८॥

यत्र व्रजलोके सात्वतानां वैष्णवानां शुद्ध धर्मः मूर्त्ता मूर्त्ति धारिण इव उर्व्वीति विद्वद्वरेण्याः ब्राह्मणश्रेष्ठाः आसते वसन्ति । एके ब्राह्मणाः तस्य भागवतस्य ये धर्मा स्तन्मात्र प्रतिपादि वेदानां वक्तारः । एके रता अनुरक्ता नारद पञ्चरात्रोक्त धर्मे ये स्ते ॥६९॥

हैं । सुतरां दूसरे की बात ही क्या है ? इनके सौहार्द्द की रीति यह है कि श्रीराधिका मालाम्बरादि का निर्म्माण विचित्त रूपसे कर, श्यामला जैसे जान न सकी इस रीति से सखी द्वारा श्यामला के नाम से श्रीकृष्ण को भेजती रहती है । अनन्तर श्रीकृष्ण विचार कर जान जाते हैं कि ये सब भूषणादि श्यामलाकृत नहीं है, श्रीराधा ने स्वयं निर्म्माण किया है । तब विदग्धवर श्रीकृष्ण श्रीराधा की प्रीति के निमित्त श्यामा को स्वीय निकट में अभिसार कराते हैं । इस प्रकार श्यामला भी श्रीराधा को श्रीकृष्ण के समीप में अभिसार कराती है ॥६७॥

लोक कृष्ण प्रेम के निमित्त सत्वर ही लज्जादि परित्याग करते हैं, किन्तु आश्चर्य्य है, कृष्ण कान्तागण प्रगाढ़ कृष्ण प्रेमवती होकर भी उस लज्जा आदि की बारम्बार अपेक्षा करती हैं ॥६८॥

प्रतिग्रहं ये व्रजराज दान मात्रस्य कुर्वन्ति तदेक याज्याः ।
केचित् परैश्वर्य्य पराः परेच माधुर्य्य धूर्य्या व्रजराजसुनोः।७०
ताम्बुलिका स्तैलिक मालिकाद्या श्चैतन्यरूपा अपि नारधर्माः
ते नारधर्माअपिदेवतानां दुर्लभ्यलाभा व्रजचन्द्रभावाः ॥७१॥

ये ब्राह्मणाः व्रजराजेन श्रीनन्देन यद् दीयते तन्मात्रस्य प्रतिग्रहं कुर्व्वन्ति । सनन्द श्चासौ एक श्चेति तदेक नन्द एव एव याज्यो येषां ते । केचिद् ब्राह्मणा व्रजराज सुनोः परैश्वर्यपराः ग्राहिणः ग्राहिणः परे ब्राह्मणाः श्रीकृष्णस्य माधुर्य धूर्य्याः माधुर्य्य ग्राहिणः ॥७०॥

ताम्बूल तैल माला जीविनो ये तदाद्याः चैतन्यरूपा श्चित् स्वरूपा आपि नारधर्माः नराणामिव धर्म चेष्टादि येषां ते तथा भूता भूत्वापि देवानां ये दुर्लभ्या स्तेषां लाभो येषां ते । दुर्लभ्येनेवाह व्रजचन्द्रे श्रीकृष्णे भावो येषां ते ॥७१॥

उस व्रजलोक में भूदेव-वरेण्य अर्थात् ब्राह्मण श्रेष्ठगण वैष्णवगण के शुद्ध धर्म की मूर्त्ति रूप में निवास करते हैं, आप सब भागवत धर्म प्रतिपादक वेद के वक्ता एवं श्रीनारद पञ्चरात्रोक्त धर्म में अनुरक्त हैं ॥६६॥

उक्त ब्राह्मणगण केवल व्रजराज श्रीनन्द दत्त दान ही प्रतिग्रह करते हैं एवं एकमात्र श्रीनन्दराज को याजन कराते हैं, उन ब्राह्मणों के मध्यमें कोई कोई व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के परमैश्वर्यग्राही हैं, अपर कोई कोई उनके माधुयग्राही हैं ॥७०॥

उस व्रजधाम में तैलिक, ताम्बूली, माली, प्रभृति चित् स्वरूप होकर भी नर धर्म विशिष्ट हैं,अर्थात् मनुष्योंके तुल्य चेष्टाशील हैं, एवं वे सब इस प्रकार नर धर्म-परायण होकर भी व्रजचन्द्र में भावमय होने के कारण देव दुर्लभ लाभ विशिष्ट हैं। अर्थात् देवतागण जो

गवां गृहाणामपि यत्र भित्ति
श्चतु श्चतुष्कं स्फटिकाख्यरत्नैः ।
गोपानसी मारकती च वंश्याः,
स्वर्णस्य कोणेषु तथा महान्तः ॥७२॥
गोपानसीनां पृथु यच्चतुष्कं तत् कौणिकं यत्र तु कौरविन्दम् ।
महा वड़भ्यो यत एव लग्ना नाना मणीनां पटलानि यत्र॥७३

यत्र गवां ये गृहा स्तेषामपि भित्ति चतुर्भिः सह चतुष्कं भित्ति चतुर्णां समाहारः घटिकाख्यरत्नै र्निर्म्मितमिति शेषः । तथा च चतुर्द्दिग्वर्त्ति गृह चतुष्टयस्य परस्पर भित्ति मिलनान्नमध्ये चतुष्कं । पाड़ि इति प्रसिद्ध गोपानसी मरकतमणि मया गोपानसी तु वड़भीच्छादने वक्र दारुणि स्वर्णस्य महान्तो वंशाः कोणेषु लग्ना इत्यर्थः ॥७२॥

गो गृहानां पश्चाद्भित्ति चतुष्टयं स्फटिक निर्म्मितमुक्त्वा गृहा नामग्रवर्त्ति गोपानसीनां कोणे स्थितिं कौरुविन्द कुरुविन्द जातं, कुरुविन्दं महोत्पलं पद्मरागमणिजातं । यतः महावड़भ्योलग्ना । यत्र यासु वड़भीषु पटलानि नानामणिनामिति ॥७३॥

सौभाग्य प्राप्त करने में असमथ हैं, आप सब उक्त सौभाग्य लाभ से धन्य हैं ॥७१॥

वहाँ पर गो गृह समूह की भित्ति चतुष्टय एवं चतुष्क अर्थात् चतुर्दिकवर्त्ति गृह चतुष्टय की परस्पर भित्ति मिलन के मध्य स्थान स्फटिक मणि निर्मित्त हैं । गोपानसी अर्थात् गृह चूड़ाच्छादन में जो वक्र काष्ठ की आवश्यकता होती है, उसका नाम गोपानसी है । यह भी मरकत मणि निर्म्मित है एवं सुवर्ण निर्मित महावंश दण्ड भी इसके ही कोण में लग्न है ॥७२॥

येषां लसन्त्यङ्गण एव गावः सरस्वती मूर्त्तिवदेव शुक्लाः ।
मनः समाना अवशा विचित्रं तपस्विसङ्घा इव सुव्रताश्च ।७४
चिन्तामणि व्यूह समाश्च काम-दुघा निदाघा इव फुल्ल वत्साः ।
सत् काव्यवत् सुन्दर भूरिवर्णाः वेणु स्वनायैव सदोर्द्धकर्णाः।७५

येषां गृहाणामङ्गणे गावो शुक्लाः लसन्ति । कीदृश्यः ? सरस्वस्या मूर्त्ति इव । मनो यथा चञ्चलतया सदा अवशाः तथाभूताः, भूत्वापि तपस्वीनां समूह इव सुव्रताः सुस्थिरा श्चेति विचित्रम् ।।७४।।

गावः कीदृश्यः ? चिन्तामणीनां समूह तुल्याः कामान् दुह्यन्ति यास्ताः दुह प्रपूरणे । निदाधा काला इव फुल्ला वत्सा बालका यासां ताः पक्षे वत्साख्य पुष्पविशेषाः । सत्काव्य यथा सुन्दर भूरिवर्णाः अक्षराः, अत्र वर्ण शब्देन शुक्लादिवर्ण युक्ताः, वेणुध्वनिश्रवणार्थं उद्ध्वानि कर्णानि यासां ताः ।।७५।।

उक्त गो-गृह समूह के अग्रवर्त्ती गोपानसी है, अर्थात् गृह के अग्र भाग में जो वक्र काष्ठ प्रदत्त होता है, उसके मध्यमें जो स्थूल एवं चतुष्क है । उसके कोण समूह पद्मराग मणि निर्म्मित हैं। इससे महावड़भी समूह अर्थात् गृह चूड़ा समूह संलग्न हैं। यह गृह चूड़ा व चूड़ा समूह की जो छत है, वह भी विविध मणि-माणिक्य द्वारा निर्म्मित है ।।७३।।

वह सब गो-गृह के अङ्गण में देवी सवस्वती की मूर्त्ति की भाँति शुभ्रवर्ण गो-धन समूह शोभित हैं। जैसे मन चाञ्चल्य के कारण सर्वदा ही अवश हैं, तद्रूप वह गो-यूथ अवशीभूत होकर भी तपस्विगण के समान सर्वदा सुस्थिर हैं । यह अतिशय आश्चर्य है ।।७४

वह गोधनवृन्द चिन्तामणि समूह के समान काम दुघा है, अर्थात् सर्वदा अभीष्ट सम्पूरण में समर्थ हैं एवं वे सब निदाघ काल

यत्रैव भूमौ पतिताः प्रतीताः,
सजीवगर्भा इव कौमुदीनाम् ।
कैलाश शैलस्य शिल शिखण्डाः,
सञ्चारि शिला इव संलसन्ति ॥७६॥

हिण्डीर खण्डा इव दुग्धसिन्धो,
ये ग्रन्थिवच्छ्रीहरहासजाताः ।
विशुद्ध सत्त्वस्य च मांसपिण्ड
तुल्या भ्रमन्तो भुवि भूरिवत्साः ॥७७॥

यत्रैव भूरि भूरि वत्सा वहु भ्रमन्तः सन्तः संलसन्तीति श्लोक द्वयेनान्वयः। अद्भुतोपमयं वत्सानां भ्रमणम्। उत्प्रेक्षां दर्शयति। भूमौ पतिताः कौमुदीनां ज्योत्स्नानां स जीवगर्भा इव जीव सहित बालकाः इव प्रतीताः ज्ञानविषयाः। पुनर्वत्साः कीदृशाः? कैलास पर्वतस्य सञ्चारि शीला गमनशीलाः शिला शिखण्डाः शिला शिखराः इव ॥७६॥

दुग्ध समुद्रस्य हिण्डीर खण्डा फेनखण्डा इव ये वत्साः श्रीहरस्य महादेवस्य हास्येन जाताः। ग्रन्थिवत् तथा च हरहासा ग्रन्थि रूपेण

के समान प्रफुल्ल वत्सा विशिष्ट हैं। वत्स शब्द का अर्थ वत्स नामक पुष्प विशेष है। सुतरां वे सब निदाघ काल में प्रफुल्ल वत्स पुष्प के समान शोभा युक्त है। सत् काव्य में जिस प्रकार सुन्दर वहु वर्ण अर्थात् अनेक अक्षर विन्याम दृष्ट होते हैं, उस प्रकार उक्त गो-यूथ भी शुक्लादि वहु वर्ण विशिष्ठ हैं। वे सब श्रीकृष्ण की मोहन वेणु ध्वनि श्रवण करने के लिए सर्वदा ही उद्ध्वं कर्ण हैं ॥७५॥

वहाँ पर जो सब गो-वत्स भूतलमें उपविष्ट हैं,वे सब ज्योत्स्ना के जीवन्त बालक के समान प्रतीत हो रहे हैं, किम्बा कैलाश पर्वत में सञ्चरण शील श्वेत शिलाखण्ड के समान शोभित हैं ॥७६॥

किं गण्डशैलाः स्फटिकाचलस्य,
महोर्म्मयः किं नु महापयोधेः ।
सायं गृहा ये मुनिवच्च जीवन्-
मुक्ता इव स्वैरं चिरा हि षण्डाः ॥७८॥

यत्रासते गर्वधरा इवैते हुम्बादकारा गलकम्बलाश्च ।
विरक्त लोका इव पुंगवास्ते मत्ता इव स्तब्ध सुशोणनेत्राः॥७९

परिणताः इव । अप्राकृत सत्त्वस्य मांस सर्वत्र वत्सानां मनोहर शुक्ल वर्णांशे तात्पर्य्यम् ॥७७॥

स्फटिकाचलस्य किं गण्डशैलाः स्थूल शिलाः गण्ड शैलास्तुच्युताः स्थूलोपला गिरः इत्यमरः । क्षीर समुद्रस्य इव किं महोर्म्मय इत्याद्युप्रेक्षावन्तः षण्डाः स्वायं गृहायत्र सायंकालो जातस्तत्रैव गृहा येषां ते मुनिरिव जीवन्मुक्ता इव स्वेच्छाचारिणश्च यत्रासते इति परेणान्वयः ॥७८॥

एते पुंगवा पुरुषगावः गर्वधरा इव अहङ्कार धराः इव । हुम्बादकारा गोजातीय शब्दधराः यत्र भूमावासते । गर्वधर पक्षे

और भी उस व्रजभूमि में भ्रमणशील वहु गोवत्स दुग्ध समुद्र के फेन खण्ड के समान एवं श्रीमहादेव के हास्य ग्रन्थि रूपमें परिणत होने से जिस प्रकार मनोहर होता है, तद्वत् एवं विशुद्ध सत्त्व के मांस पिण्ड स्वरूप में अर्थात् सर्वांशसुन्दर श्वेत वर्ण रूपमें शोभित हैं ॥७७

जहाँ पर सन्ध्या उपस्थित होती है, उस स्थान में ही जिन सब के गृह एतादृश जीवन्मुक्त के समान स्वेच्छाचारी षण्ड (षाँड़, विजार) सकल वहाँ पर स्फटिका चल के समान विराजित है, सुतरां गण्ड शैल अर्थात् सामान्य स्थूल शिला खण्ड की वात ही क्या ? वे सब क्षीर समुद्र की भाँति जब शोभित हैं, तब तरङ्ग की बात ही क्या है ॥७८॥

नन्दीश्वरस्य प्रिय दक्षिणस्थ,
स्तत् सौदरः सोदरवच्चकास्ति ।
यत्रालयः श्रीवृषभानु नाम्नो,
नाम्नोदित स्तस्य धराधिराज ॥८०॥

अकार विश्लेषादहम्बादकराः। पुनः कीदृशी विरक्ता इव वैराग्य युक्ता इव गलकम्बला गलकम्बला युक्ताः लम्बायमान गलकम्बलं नान्येषाम् विरक्त पक्षे गले कम्बल युक्ताः, मत्तानामिव स्तब्धे स्थिरे सुश्रोणे रक्त वर्णे च नेत्रे येषां ते ॥७९॥

श्रीकृष्णपितुरालयमुक्त्वा श्रीराधिकापितुरालयमाह। नन्दीश्वर पर्वतस्य प्रियश्चासौ दक्षिणदेशस्थश्च सौदरः सदृशो यो धराधिराजः स सोदरवत् सहोदर वत् चकास्ति । यत्र पर्वते श्रीवृषभानुनाम्न आलयः चकास्ति। तस्य वृषभानो र्नाम्ना उदितः ख्यातः स पर्वतः ॥८०॥

वहाँ पर पुरुष गो सकल पर्वत के समान "हाम्बा" रवकारी हैं, वैराग्य युक्त जनगण जैसे गले में कम्बल बाँधकर भ्रमण करते हैं, उस प्रकार ये सब भी गल-कम्बल विशिष्टएव, मत्त की भाँति स्थिर एवं रक्तवर्ण नयनयुक्त हैं ॥७९॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण के पितृ भवन की वर्णना कर श्रीराधिका के पितृ भवन की वर्णना करते हैं। नन्दीश्वर पर्वत के ठीक दक्षिण दिक् में उसके ही सदृश पर्वत सहोदर की भाँति शोभित है। उक्त पर्वत में ही श्रीवृषभानु नामक भवन विद्यमान है। इस वृषभानु नाम के अनुसार उक्त पर्वत भी वृषभानु नाम से विख्यात है ॥८०॥

श्रीनन्दराजः स यथा तथा,
स व्रजस्य राजा वृषभानु तेजाः ।
पुरीव तस्यैव पुरी च तस्य,
पुत्री च पुत्रश्च तयो यशोलम् ॥८१॥

नन्दीश्वरः श्रीवृषभानुशैल मध्ये तु मद्ध्येयतमस्वरूपम् ।
सङ्केत नामास्पदमेवशङ्के प्रेमैव तद्द्वन्द्व वरस्य मूर्त्तं ॥८२॥

नन्दीश्वरस्येश्वरकोणकन्दे पर्य्यन्त भूमौ विधुहृद्यनामा ।
तस्यैव चूड़ैवंसु यावटाख्या पल्लीमणीनां घटिता घटाभिः ।८३

यथा श्रीनन्दराजः व्रजस्य राजा तथा स वृषभानु व्रजस्यराजा वृषभानो ज्यैष्ठ मासीय सूर्य्यस्येव तेजो यस्य सः । तस्य वृषभानोः पुरी च तस्यैव नन्दस्यैव पुरीव । तयौ वृषभानुनन्दयोः पुत्री श्रीराधिका पुत्रः श्रीकृष्णः यशोलम् यशसा पूर्णश्चेति ॥८१॥

सङ्केत स्थलं निरूपयति । मम ध्येयतमस्वरूपं तत् सङ्केत नामास्पदं द्वन्द्ववरस्य राधा कृष्णस्य मूर्त्तं प्रेमैवाहं शक्के ॥८२॥

यावटाख्यं श्रीराधिकायाः श्वशुर गृह निरूपयति । ईश्वर कोणः ईशान कोण श्चासौ कन्द सुखदश्च तस्मिन् पर्य्यन्त भूमौ

जिस प्रकार नन्दराज व्रज का राजा हैं, उस प्रकार श्रीवृषभानु भी व्रज के राजा हैं, आप ज्येष्ठ मास के सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उनकी पुरी श्रीनन्दराज की पुरी के तुल्य है एवं उन दोनों के पुत्री पुत्र अर्थात् श्रीवृषभानु-पुत्री श्रीराधिका एवं श्रीनन्दराज-पुत्र श्रीकृष्ण भुवन व्यापी यश से पूर्ण है ॥८१॥

श्रीनन्दीश्वर एवं श्रीवृषभानु पर्वत के मध्यस्थल में मदीय ध्येयतम स्वरूप (सङ्केत) नामक स्थान है। मैं इस सङ्केत स्थान को श्रीराधाकृष्ण के मूर्त्तिमान प्रेम के समान मानता हूँ ॥८२॥

पुरी प्रणीता वृषभानु नाम्ना,
निर्म्माय यत्रोल्लसिता सुतायै ।
यन्मन्दिरस्योपरिगास्वकान्तं,
सा लोकते तां स निजालयोद्‌र्ध्वात् ।।८४।।

परिसर भूमौ नन्दीश्वरलग्न भूमौवित्यर्थः । विधु हृद्यनामा विधुरत्र श्रीकृष्णस्तस्य हृद्य स्तन्नामा । यद्वा विधुश्चन्द्र स्तद्वदाह्लादजनकः । तस्यैव विधुहृद्य नाम्न एव चूड़ाइव मणीनां घटाभिः घटिता यावटाख्यापल्ली ।।८३।।

वृषभानु नाम्ना यत्र यावटे उल्लसिता पुरीनिर्म्माय सुतायै राधिकायै प्रणीता दत्ता, यस्याः पूर्य्याः मन्दिरस्योपरिगा श्रीराधा स्व कान्तमालोकते । स श्रीकृष्णः निजालयोर्द्धात् तां श्रीराधां आलोकते ।।८४।।

श्रीनन्दीश्वर पर्वतके सुखद ईशान कोण के मूल पर्यन्त परिसर भूमि में विधुहृद्य अर्थात् विधु-श्रीकृष्ण का प्रिय, अथवा चन्द्र के समान आह्लादजनक, इस प्रकार नाम की चूड़ा स्वरूपा एवं विविध मणि-माणिक्य की घटा द्वारा निर्मिता जो पल्ली है, इसका नाम यावट है, यह यावट ही श्रीराधिका का श्वशुरालय है ।।८३।।

श्रीवृषभानुराज यावट में एक मनोहर पुरी का निर्म्माण कर स्वीय कन्या श्रीराधा को प्रदान किये थे । उस मन्दिर की चूड़ा के ऊपर में आरोहण कर श्रीराधा निज कान्त श्रीकृष्ण को अवलोकन करती है, एवं श्रीकृष्ण भी स्वीय गृह चूड़ा के ऊपर आरोहण कर निज प्रियतमा श्रीराधा को अवलोकन करते हैं ।।८४।।

यदा गुरूणां गुरुणादरेण,
दरेण च व्यग्रतमौ पुरान्तः ।
परस्परं तर्हि विलोकमानौ,
मानौचितात् स्वस्व पुरोपरिस्थौ ॥८५॥
सङ्केत्य यत्र प्रियया विलस्य प्रोल्लस्य रस्यस्य वटस्य मूले ।
यावै स्तदङ्घ्रीरचयाञ्चकार नाम्नापि तं यावटं चकार ॥८६॥

कदा लोकते तत्राह यदेति । गुरूणां पितृ मातृश्वश्वादीनां गुरुणादरेण बहुना आदरेण दरेण भयेन च । दगये । यदा पुरान्तः पुर मध्ये दर्शनार्थं परस्परं व्यग्रतमौ तर्हि तदा स्व स्व पुरोपरिस्थौ तौ मानौचितात् परिमाणौचितात् समानोच्च देशात् निजनिज लयोद्ध्वात् विलोकमानौ भवतः ॥८५॥

यत्र यावटे रस्यस्य वटस्य मूले सङ्केत्य आनीतया प्रियया श्रीराधया सह विलस्य प्रोल्लस्य च श्रीकृष्णः तस्या अङ्घ्री यावैः यावकरसै रचयाञ्चकार तं वटं चकार ॥८६॥

श्रीराधा-श्याम परस्पर को कब अवलोकन करते हैं, प्रस्तुत श्लोक में उसका वर्णन है । पिता-माता श्वशुरादि गुरुजन के अतिशय आदर एवं भय से जब अन्तःपुर मध्य में परस्पर दर्शन के लिए अतिशय व्यग्र हो जाते हैं, तब वे दोनों निज-निज गृह के ऊपर उठकर समान उच्चदशे से परस्पर-परस्पर को विलोकन करते हैं ॥८५

विदग्धवर श्रीकृष्ण जिस रमणीय वट तरु मूल में प्रियतमा श्रीराधा को सङ्केत पूर्वक अभिसार कराकर उनके साथ लीला विलास करते हैं, एवं परमोल्लास-भर से उनके चरण-कमल यावक रस से अर्थात् अलक्तक रस से सुरञ्जित किये थे, उस वट तरु के नामानुसार से ही वह स्थान 'यावट' नाम से अभिहित है ॥८६॥

श्रीकृष्णेन कृपाभरेण गुरुणा चैतन्य रूपेण या,
तल्लीलारसधामधामजनिता रीतिः प्रकाशं गता ।
तस्या लेशविशेषवेशमनने श्रीरीतिचिन्तामणौ,
सर्गोऽयं प्रथमोऽभवद्भुवमुदे नन्दीश्वरोद्देशतः ॥८७॥

श्रीकृष्णेन श्रीनन्दात्मजेन । यद्वा श्रीकृष्णाख्येन गुरुणा । अथवा आचार्य्यं मां विजानीयात् इत्यादि रीत्या सर्वं तृतीयान्तपदानि गुरुणेत्यस्य विशेषाणि । पृथक् पद पक्षे स्फुटार्थः । पक्षे । श्रीकृष्णेनेत्यस्य विशेषणानि । चैतन्यरूपेणेत्यस्य वा विशेषाणि । यद्वा चैतन्य रूपो रूपगोस्वामी च तेन एतेन कर्त्रातयो र्लीला रसस्य धाम आश्रयं यद्धामः स्थान तत्र या जनता जन समूहा स्तेषां या रीति र्मम हृदये प्रकाशं गताः तस्या रीते र्लेशविशेषस्य वेशे प्रवेशे मननं यतः तथाभूते रीति चिन्तामणौ नन्दीश्वरस्यो‍द्देशतः भवस्य महादेवस्य संसारवर्त्ति जनस्य वा मुदे आनन्दाय प्रथमोऽयं सर्गोऽभवत् ॥८७॥

श्रीकृष्ण चैतन्य स्वरूप कृपामय गुरुदेव किम्बा नन्दनन्दन श्रीकृष्ण, कृपामय गुरुदेव, श्रीचैतन्य महाप्रभु अथवा श्रीरूप गोस्वामी श्रीराधा-श्याम की लीलारस का आश्रय स्थान श्रीवृन्दावन-धामवासी जन समूह की रीति प्रकाशित किये हैं। जिससे उस रीति का लेश विशेष में प्रवेश के लिए बुद्धि का उदय होता है, उस "श्रीव्रजरीति-चिन्तामणि" नामक ग्रन्थ में नन्दीश्वर के उद्देश्य में महादेव का अथवा संसारवर्त्ति जनों का आनन्द विधान हेतु यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ है ॥८७॥

॥ इति प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥

* * *

❀ द्वितीयः सर्गः ❀

एवम्विध श्रीव्रजराजिराजो,
नन्वीश्वरोऽयं परितोवनानि ।
नानाविधा येषु लसन्ति वृक्षा,
वल्लयो निकुञ्जाश्च विहङ्ग रङ्गाः ॥१॥

यत्रोद्गलद् गुग्गुलपिच्छिलेषु वर्त्मस्वटव्याः प्रचरन्ति देव्यः।
परस्परं वद्धकरा निजेश युगस्य लीला समयानुसाराः ॥२॥

एवम्विध श्रीव्रजराजिषु राजते योऽयं नन्दीश्वर स्तस्य परितश्चतुर्द्दिक्षु वनानि सन्ति । येषु वनेषु विहङ्गानां पक्षिणांरङ्गो यत्र तथा भूता वृक्षा वल्ल्यो निकुञ्जाः लसन्ति ॥१॥

यत्र वनेषु अटव्यां उद्गलद् पिच्छिलेषु मार्गेषु देव्यो वन देव्यः प्रचरन्ति गच्छन्ति । कीदृश्यः पिच्छिलात् स्खलन शङ्कया परस्पर गृहीत हस्ताः । कदा तत्राह । निजेश युगस्य श्रीराधाकृष्णस्य लीला समयेऽनुसारो गमनं यासां ताः ॥२॥

एवम्विध शोभनीय व्रजराजि के मध्ये में श्रीनन्दीश्वर विराजित है । उसके चतुर्द्दिक में अनेक वन विद्यमान हैं, उन सब वन में विहङ्गगण की केलिरङ्ग युक्त विविध वृक्ष-वल्ली एवं निकुञ्ज शोभित हैं ॥१॥

उस वन के मध्यमें वृक्ष से उद्गलित गुग्गुल के द्वारा वन पथ ऐसा पिच्छिल है कि वन देवीगण जब निज प्रभु श्रीराधाकृष्ण की लीला समय में उस पथ में गमन करती हैं तब पद स्खलन की आशङ्का से परस्पर करधारणकर गमन करती हैं ॥२॥

यत्राटवी-मेष मुखादुदीर्ण संजीर्ण कक्कोल फलैः सुगन्धि ।
दिशां मुखं तन्महिषौघ शृङ्ग क्षुण्णत्वगाद्यैः शरलादिभिश्च ।३
यत्राटवी हस्ति घटा विभग्न सच्छल्लकी पल्लविका विभान्ति
वनीय धेनुगण जग्ध गन्ध तृणैः सुगन्धीनिदिशां मुखानि ।।४

कुत्रापि कीशैः कवली कृतानां,
द्राक्षाफलानां बहुगुच्छगुच्छैः ।
सच्छादितानि च्छवि मारभन्ते,
भुवस्तलान्याम्रफलादिभिश्च ।।५।।

यत्र येषु वनेषु अटवीमेषस्य वनस्थ मेषस्य मुखाद् उदीर्णानि तथा जीर्णानि यानि कक्कोल फलानि तैः शरलादिभिश्च वृक्षै र्यत्र दिशां मुखं सुगन्धि । कीदृशै स्तन्महिषौघानां वनस्य महिषसमूहानां शृङ्गैः क्षुण्णा त्वक् येषां तदाद्यैरिति ।।३।।

यत्र वनहस्ति भग्न सच्छल्यक्याः हस्ति भक्षवृक्षविशेषस्य पल्लविकाः नवीन पत्राः विभान्ति । वनधेनुभुक्तगन्धतृणै दिशं मुखानि सुगन्धीनि ।।४।।

कुत्रापि स्थले भुवस्तलानि छवि शोभा मारभन्ते । कीदृशानि कीशैर्वानरै र्भक्षितानां द्राक्षा फलानां बहुगुच्छानां गुच्छै स्तथा आम्र फलादिभिश्च संछादितानि ।।५।।

उस वन के मध्ये वन्यमेष के मुख से उद्गीर्ण सुजीर्ण कक्कोल नामक सुगन्ध फल के सौरभ से एवं वन्य महिष समूह की शृङ्ग द्वारा क्षुण्णत्वक् शरलादि सुगन्धि वृक्ष के सौरभ से दिग् विदिक् प्रमोदित है ।।३।।

वहाँ पर वन हस्ती समूह द्वारा भग्न दिव्य शल्लकी वृक्ष के नव पल्लव सकल शोभित हैं एवं वन्य धेनुगण भुक्तगन्ध तृण की गन्ध से चारोंदिक् सुगन्धि युक्त हैं ।।४।।

सत्कर्ण भूषा मरिचादि गुच्छाः पुलिन्दकान्ताः प्रचरन्ति यत्र
ताम्बूल पूलैः करभङ्ग सद्यः कर्पूर रम्भारसवासितास्याः ॥६
रसाल माला पनशावलीभि राम्रातकैः श्रीफलजम्बुभिश्च ।
पलाश पूगासन नारिकेलै र्मधुक पुन्नाग युगैः गिरीशैः ॥७॥

प्रिया विल्वार्ज्जुन कर्म्मरङ्गैः
कपित्थलोध्र प्रियकाख्ययुग्मैः ।
लवल्यशोकै र्लकुचैः करीरैः
यूथीयुगैश्चम्पक युग्मकैश्च ॥८॥

यत्र पुलिन्द कान्ताः प्रचरन्ति । कीदृशाः ? शोभन कर्ण भूषा मरीच्यादीनां गुच्छा यासां ताः । ताम्बूलस्य पूलैः पूरै रतिशयै स्तथा करभग्नेन सद्य स्तन् क्षणात् कर्पूरोयत्र तथाभूतै रम्भारसैश्च वासतानि आस्यानि यासां ताः ॥६॥

नानाविध उल्लसित पुष्प फलादि समूहै विचित्रा नानाविधा ये मालादि वृक्षाः तै स्तथाविध लता समूहैः शारी शुकाद्यैः पक्षिभि र्नानाविध पशुभिश्च वनानि भान्तीति चतुर्थश्लोकेनान्वयः । पुन्नागादीनां युगत्वन्तु भाति वर्णादि भेदादिति ॥७-८-९-१०॥

किसी स्थान पर वानरगण द्वारा कवलीकृत द्राक्षा फल के बहुतर गुच्छ व आम्रफलादि द्वारा भूमितल समाच्छादित होने से एक अपूर्व शोभा का विकाश हुआ है ॥५॥

वहाँ पर सब पुलिन्द रमणी विचरण करती हैं, उन सबके वर्ण भूषण मरिचादि के गुच्छ से सुशोभित हैं, एवं उन सबके वदन ताम्बूल युक्त हैं, जो सद्य करभग्न कर्पूर व रम्भारस से अतिशय सुवासित हैं ॥६॥

तमालमालानवमालिकाभि
र्लवङ्गजातिद्वयराथविल्वैः ।
कोषातकी पर्कटिका वटाद्यै
रश्वत्थ-शालैः खदिरैः शमीभिः ॥९॥

नानोल्लसत् पुष्पफलौद्य चित्रै
र्वृक्षैः समन्ताद् बहुशो वनानि ।
नानाविधैश्चारुलता समूहैः
शारी-शुकाद्यैः पशुभिश्च भान्ति ॥१०॥
चतुर्भिश्च कुलकम् ॥

सितासितै र्लोहित-पीतमिश्रैः कह्लार पद्मोत्पलपुष्पजातैः ।
तड़ाग-वापी सरसी नदीभि राजन्ति हंसादिगणैश्च यानि॥११

कर्पूर धूलीरचितेव भूमी
क्वचित् क्वचित् कुङ्कुमभावितेव ।
कस्तूरिका चूर्ण कृतेव काचित्
भूमीव भूमी क्वाचिदर्च्य गन्धा ॥१२॥

सतेति । सिता सितादिभिः । शुक्लकृष्णादि वर्णैः कह्लार पद्मादिभि र्हंसादि पक्षिगणैश्च विशिष्टै स्तड़ागादिभि र्यानि वनानि राजन्ति ॥११॥

क्वचित् क्वापि स्थले भूमि कर्पूर धूलिरचिता इवार्च्य गन्धा पूजागन्धा । एवं क्वचित् कुङ्कुम रचिता इव कस्तूरिका चूर्णकृता इव भूमीव प्राकृत भूमीव ॥१२॥

वह सब वन मध्य में जो तड़ाग, वापी, सरसी नदी प्रभृति जलाशय हैं, उसमें श्वेत, कृष्ण, रक्त, पीत एवं मिश्रवर्ण के कह्लार, पद्म व उत्पलादि विविध पुष्पराजि शोभित हैं एवं हंसादि विविध जलचर पक्षी उक्त सब जलशय में विचरण कर रहे हैं ॥११॥

क्वचित्तु भूमौ विविधैव रत्नै र्नानाविधै र्मारकती च कापि।
कुत्रापि सा मारकतीव घासै र्गवादिभि र्भुक्तमैश्च नूत्नैः॥१३
जाम्बुनदी राजति कापि भूमौ सदिन्द्र नील प्रकृतिश्च कापि।
यत्र स्थिते राधिकयापि कृष्णे विपक्ष ईक्षेत जनो जनैकम् ॥१४

क्वचिन्नानाविधै रत्नैः भूमी विविधा नानाविधा। सा भूमीर्घासै र्मारकतीव मरकत मणि मणीव कुत्रापि गवादिभि र्भुक्तमैर्घासै र्नूत्नैश्च घासै र्मारकतीव ॥१३॥

क्वापि भूमि जाम्बुनदी स्वर्णमयी कापि इन्दनीलमयी। यत्र काञ्चन मय्यां इन्द्रनीलमय्यां भूमौ राधिकया सह कृष्णे स्थिते सति विपक्षोजनः एकं जनं काञ्चन भूमौ श्रीकृष्णं इन्दीवर भूमौ श्रीराधां ईक्षेत। उभय भूमौ उभयोर्वर्ण साम्यात् उभया रदर्शनं व्यङ्गयम् ॥१४

उक्त श्रीवृन्दावन की भूमि कहीं पर कर्पूर धूलि रचित के समान कहीं पर कुङ्कुमभावित की भाँति, कहीं पर कस्तूरिका चूर्ण निर्मित के तरह, कहीं पर पूजा गन्ध विशिष्टा एवं कहीं पर प्राकृत भूमि के तुल्य प्रतीत होती है। किन्तु वस्तुत वहाँ की भूमि सर्वत्र ही अप्राकृत है ॥१२॥

वहाँ पर नानाविध रत्न द्वारा भूमि सकल अनेक प्रकार से प्रतीत होती हैं, किसी भूमि केवल मरकत-मणिमयी दृष्ट होती है, और कहीं पर किसी भूमि गवादि भुक्ततम नूतन घास द्वारा भी मरकतमणि के सदृश दिखाई पड़ती है ॥१३॥

किसी भूमि स्वर्णमयी है, अपर किसी भूमि दिव्य इन्द्रनीलमयी है। वह काञ्चनमयी एवं इन्द्रनीलमयी भूमि में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण अवस्थित होने पर उभय भूमि में उभय के वर्ण साम्य हेतु विपक्षजन परस्पर को एकाकी दर्शन करते हैं। अर्थात् काञ्चन भूमि में श्रीकृष्ण को एवं इन्दीवर भूमि में श्रीराधा को दर्शन करते हैं,

स्थली क्वचिन्मारकती च यत्र सुवर्ण गुल्म द्रुम विरुदाद्याः ।
सुवर्ण भूमी क्वचिदेव यत्र वृक्षादिका मारकता लसन्ति ॥१५

कुत्रापि सा पङ्कज रागभूमी,
वीरुद् द्रुमाद्या स्फटिक प्रभूताः ।
कुत्रापि भान्ति स्फटिकाख्य भूमौ,
वल्यादिकाः पङ्कज राग जाताः ॥१६॥

क्वचिद् द्रुमा मारकता लसन्ति,
सुवर्ण वल्लीवर-वेल्लिता ये ।
क्वचित् सुवर्ण द्रुमसञ्चया यान्,
वेवेष्टि सा मारकती च वल्ली ॥१७॥

कुत्रापि वृक्षाः स्फटिका प्रभूता,
सः वेल्लिता पङ्कज रागवल्ल्या ।
क्वचिद्द्रुमा पङ्कज राग जाता,
आलिङ्गता स्फटिकाख्य वल्लया ॥१८॥

क्वापि भूमी मारकती गुल्मादयः स्वर्णमय्यः क्वापि भूमी स्वर्णमयी वृक्षादयो मारकताः । अत्राग्रे च श्रीकृष्णस्य तत् परिकराणां च दर्शनादि जन्य स चमत्कार सुखविशेषाणां परमावधिदानार्थमनादिसिद्धशोभायाः परमाकाष्ठामय्यत्यद्भुता रचनेयं ज्ञेया ॥१५॥

पङ्कज रागः पद्मरागमणिः ॥१६॥

सुवर्ण वल्लीवरेण वेल्लिता ॥१७॥१८॥

किन्तु काञ्चन भूमि में श्रीराधा की काञ्चन कान्ति एवं इन्दीवर भूमि में श्रीकृष्ण की अङ्ग कान्ति एकत्र मिल जाने के कारण विपक्षजन उभय का अवस्थान समझ नहीं पाते हैं । यह ही रहस्य है ॥१४॥

यो रत्न वृक्षः पुरुरत्नशाखो,
नानामणी पल्लवकाश्च शाखाः ।
ते पल्लवा भूरि मणिप्रसूनाः,
प्रसून सङ्घा बहुभेद गन्धाः ॥१९॥
विहार रत्ना चलतः पतद्भि,
र्मणिद्रवैस्तुल्य सारं प्रपूर्णम् ।
भू-भूरुहां रत्न पृथक् सुरत्नै,
र्भातं मणोपक्षिभि रालवालम् ॥२०॥

पुरुरत्नानां ना रत्नानां शाखा यस्य सः नाना मणीनां पल्लवा येषां तथाभूताः शाखाः ते पल्लवाश्च भूरि मणीनां प्रसूणाः पुष्पा येषां तथा भूताः । प्रसून संघा नानाविध गन्धयुक्ताः ॥१९॥

तत्र वृक्ष चतुर्द्दिग्वर्त्ति वृक्षादि सेचनार्थं चतुष्कोणाष्ट कोणादि निम्नस्थानमालवालः वर्णयति । विहार रत्न पर्वतात् मणि द्रव्यै

कहीं पर भूमि मरकतमयी है, उसमें गुल्म लतादि स्वर्णमयी है, कहीं पर भूमि स्वर्णमयी है और वृक्षादि मरकतमय रूप से शोभित हैं । श्रीकृष्ण उनके परिकरगण के दर्शनादिजनित चमत्कार सुख विशेष की परावधिदान के निमित्त ही इस अनादि सिद्ध शोभा की पराकाष्ठा रूपमें अद्भुत रचना किये हैं ॥१५॥

कहीं पर वह भूमि पद्मरागमयी है, और तरुलतादि स्फटिक के समान हैं एवं कहीं पर भूमि स्फटिक तुल्य है और तरुलतादि पद्मरागमणि जात रूप से शोभित है ॥१६॥

कहीं पर मरकतमणिमय वृक्ष सुवर्णलता द्वारा वेष्टित है एवं कहीं पर सुवणमय वृक्ष मरकत-मणिमयी लता द्वारा सुवेष्टित होकर शोभित हैं ॥१७॥

कहीं पर स्फटिक सदृश वृक्षसमूह पद्मरागलता द्वारा संवेष्टित है, कहीं पर पद्मरागजात वृक्ष समूह स्फटिक लता द्वारा आलिङ्गित हैं ॥१८॥

स्वयम्भुवो धूर्जटयश्च सर्वे,
प्रादुर्भवे सुष्ठु जटा घटायाम् ।
सुच्छायकाः सूर्य्यसमाश्च वृक्षा,
आवालशोभाः सनकादिवच्च ॥२१॥

स्तुल्य भारैः तुल्यैः समान वर्णैं निसारैः सर्णेति प्रसिद्धैः प्रकर्षेण प्रर्णमालवालं कीदृशं ? भू भूरुहां वृक्षाणां रत्नातः पृथक् सुरत्नैराल वालं भातं तथा मणीनां पक्षिभिश्च भातम् । तथाच यत्र यादृश-रत्नमयाः वृक्षाः तस्मात् रत्नात् पृथक् मणिमयाः पक्षिण स्तैश्च भातमित्यन्वयः ॥२०॥

सर्वे वृक्षः महादेव तुल्याः । तुल्य धर्ममाह । प्रादुर्भवे स्वयम्भुवः स्वयमुत्पन्नाः । सुष्ठु जटा घटाया महादेवस्तु लग्नकेशजातजटा समूह युक्त वृक्षाणां मूलदेशस्तु शाखा पत्राणां धूरः भार वहनाद्यस्तद् युक्ता जटा मूलदेशा येषां ते । मूले लग्ने जटा इत्यमरः । धूर्जटयः । पुनः कीदृशाः ? सूर्य्यसमाः सूर्य्य सम तेजाः । अथच सुच्छायका सूर्य्यादि ताप निवारकच्छाया युक्ताः । सनकादिवत् बाल्यमारभ्य शोभा युक्ताः सदैकाकारा इत्यर्थः ॥२१॥

वहाँ पर वृक्षों के चारों ओर वृक्षादिसेचनार्थ जो चतुष्कोण अष्टकोणादि निम्न स्थान आलवाल अर्थात् स्वल्प जलाधार हैं, वे सब आलवाल रत्नमय भूमि एवं वृक्षादि से पृथक् रत्न से निर्म्मित हैं । अर्थात् वहाँ की भूमि जिस प्रकार रत्नमय एवं उसके उपस्थित वृक्षादि जिस प्रकार रत्नमया हैं, आलवाल समूह उस प्रकार रत्नमय नहीं हैं, अन्य रूप रत्नमय रूपमें प्रतिभात हैं । और भी वह आलवाल विहार रत्न पर्वत से मणि द्रव के समान वर्ण निर्झर द्वारा सर्वदा परिपूर्ण है ॥२०॥

वीजं विना रोपमृते च जाता,
अपालिता स्निग्धा विवर्द्धिताश्च ।
पक्वैरपक्वैरपि पच्यमानैः,
फलैश्च पुष्पैश्च दलैः सदाढ्याः ॥२२॥

चिदात्मका स्ताद्दश शक्ति मन्तः सर्वेऽवतारा इव तस्य रस्याः।
लोकेषु लोकै रवलोकनीया लोका इवैते व्रजभूमि वृक्षाः ॥२३

वीजं विना रोपं विना च सर्वे वृक्षजाता। अपालिता पालनं विना स्निग्धा वर्द्धिताश्च। पक्वापक्व पच्यमान फलैः पुष्पै र्दलैश्च सदाढ्याः ॥२२॥

तस्य भगवतोऽवताराइव यद्यपि सर्वेव्रजभूमिवृक्षा श्चिदात्मकाः ताद्दशः शक्तिमन्तः अवतारवत् शक्तिमन्तो रस्याश्च तदपि लोकेषु प्राकृतेषु प्राकृत लोकैः प्राकृत लोका इव अवलोकनीया द्दश्याः यथा अवतारास्तथैव वृक्षाः ॥२३॥

उन सब वृक्ष की उत्पत्ति स्वयम्भू रूप है, अर्थात् स्वयं उत्पन्न एवं सुष्ठु जटा की घटा से भी धूर्जटि अर्थात् महादेव तुल्य है, महादेव जैसे लग्न केश जात विशाल जटाभार युक्त है, उस प्रकार वृक्ष समूह के मूलदेश भी बहु शाखा पत्रादि भार विशिष्ट हैं। (जटा शब्द का अर्थ) मूल-लग्न एवं केश है। वे सब वृक्ष सूर्य्य के समान तेज सम्पन्न होकर भी सूर्य्यादि का ताप निवारक छाया युक्त है। एवं सनकादि ऋषि के समान वाल्य से ही एक ही आकार विशिष्ट व अपूर्व शोभाशाली है ॥२१॥

वीज रोपण को छोड़कर भी वे सब वृक्ष समुत्पन्न हैं, किसी ने उन सबका पालन नहीं किया है, तथापि वे सब स्निग्ध एवं विवर्द्धित हैं, पक्व अपक्व, पक्वोन्मुख फल, पुष्प पत्रादि द्वारा सर्वदा ही विभूषित हैं ॥२२॥

स्वाधीन कान्ता इव याः प्रियेण,
सदोपगूढ़ा स्तरुणातुलेन।
विचित्र पत्राङ्कुर शोभिता स्ता,
लता विलासिन्य इव स्फुरन्ति ॥२४॥
सदा समुद्यत् कलिकाः सदैव,
याः पुष्पवत्योऽपि सदा फलिन्यः।
सर्वाः सुपर्वाण उताच्युतैक,
कामप्रदायत्र लसन्ति वल्ल्यः ॥२५॥

स्वाधीनाः कान्ता यासां ता स्तथाभूता या विलासिन्यस्ता इव ता लता स्फुरन्ति। अनुरूपविशेषणमाह। तरुणातुलेन प्रियेण सदोपगूढ़ाः। विचित्र पत्राङ्कुर शोभिताः। लतापक्षे। तरुणा वृक्षेण स्त्री पक्षे युना उभय पक्षेऽतुलेन प्रियेण च आलिङ्गिताः लतापक्षे। पत्राङ्कुरं प्रसिद्धं। स्त्रीपक्षे। गण्डादौ चित्र एव पत्राङ्कुरं शब्दः प्रसिद्धः ॥२४॥

यत्र वल्ल्यो लसन्ति याः सर्वा वल्ल्यः सदा पुष्पवत्योऽपि सदा समुद्यत् कलिका कोरकः पुमानित्यमरः। सदा फलिन्यः सदा सुपर्वाणः शोभन पर्वाणि ग्रन्थयस्तद्युक्ताश्च। अच्युतस्य श्रीकृष्णस्य एक काम प्रदाः। यद्वा। अच्युता च्युति रहितैककामदा वा ॥२५॥

यद्यपि व्रजभूमिस्थ सकल वृक्ष ही श्रीभगवान् के अवतार के सदृश चिदात्मक अर्थात् चिन्मय हैं, तादृश शक्तिमान अर्थात् अवतारवत् शक्तिशाली व रमणीय हैं, तथापि इहलोक में प्राकृत व्यक्तिगण के अवतार के समान उन सब वृक्ष की भी प्राकृतवत् दर्शन करते हैं ॥२३

कान्त जिनका एकान्त अधीन है, उन सबको स्वाधीन कान्ता नायिका कहते हैं। उन स्वाधीन कान्ता नायिकागण जिस प्रकार

एवं विचित्रै स्तरुभि र्लताभि,
रामूलमुत्फुल्ल सदा सुपुष्पैः ।
कुञ्जानि सर्वत्र लसन्ति यत्र,
विश्राम्यति क्रीड़ति च व्रजेन्दुः ॥२६॥

ता यत्र कुञ्जे पिकभृङ्गगीते दीपायिता ओषधयो ज्ज्वलन्ति ।
लूमैश्चमर्य्यः परिमार्जयन्ति कस्तूरिमृगश्च सुगन्धयन्ति ॥२७

यत्र येषु कुञ्जेषु व्रजेन्दुः श्रीकृष्णः ॥२६॥
यत्र कुञ्जे दीपमिवाचारता स्ता ओषधयोज्वलन्ति । चमर्य्यः यत्र लूमैः पुच्छै परिमार्ज्जयन्ति ॥२७॥

अतुलित तरुण प्रियतम द्वारा सर्वदा आलिङ्गित हैं, उस प्रकार लतिका निचय विलासिनी की भांति विचित्र पल्लाङ्कुर से सुशोभिता होकर अतुलित प्रियतरु नवीन तरु द्वारा सर्वदा आलिङ्गित होकर है ॥२४॥

वहाँ पर सब लतिका शोभिता हैं, वे सब लतिका पुष्पिता होकर भी सर्वदा फल शालिनी एवं उद्गत कलिका हैं, सकल लता ही सुन्दर सुन्दर पर्व अर्थात् ग्रन्थि विशिष्टा एवं अच्युत अर्थात् अक्षुण्ण कामप्रदा हैं, अथवा अच्युत शब्द श्रीकृष्ण का वाचक है । सुतरां वे सब लता प्रेममय श्रीकृष्ण की एकमात्र प्रीति प्रदायिनी हैं ॥२५॥

वहाँ के समस्त कुञ्ज ही इस प्रकार कुसुम कलाप द्वारा आमूल उत्फुल्ल विचित्र तरुलता समूह द्वारा सर्वदा सुशोभित हैं, उन सब कुञ्ज में व्रजेन्द्र कुलचन्द्रमा श्रीकृष्णः नित्य क्रीड़ा व विश्राम सुख उपभोग करते हैं ॥२६॥

उस पिक-भृङ्ग-गीत मुखरित कुञ्ज में औषधि समूह प्रदीप के समान प्रज्ज्वलित हैं । चमरी समूह स्व स्व पुञ्छ द्वारा अर्थात्

चत्वार एवं तरवश्चतुर्षु,
कोणेषु येषामुभयत्र पार्श्वे ।
द्वे द्वे लतेयाः कुसुमादिभि स्ता,
नाक्रम्य रत्नालयतां प्रयाताः ॥२८॥
स्तम्भाद्रुमास्ते वड़भी च तेषां,
स्कन्धाख्य शाखाविटपैश्छदांषि ।
तदुभित्तयोद्वाश्च लता विभङ्गया,
प्रालम्ब चूड़ा कलसानि पुष्पैः ॥२९॥

येषां कुञ्जानां चतुर्षु कोणेषु चत्वार स्तरवः तेषां वृक्षाणां मुभय पार्श्वे द्वे द्वे लते। कुसुम फलदलादिभिः सह या लताः तान् वृक्षाणाक्रम्य रत्नालयतां रत्नमय गृहतां प्रयाताः, वृक्षालतादिभि राच्छन्न स्थलस्यैव कुञ्जसंज्ञा। निकुञ्ज कुञ्जौ वा क्लीवे लतादि पिहितोदरे इत्यमरः ॥२८॥

आलयस्य संस्थान विशेषणयाह। स्तम्भा इति। शाखारोह स्थानादधोर्वर्त्ति स्थूल काष्ठा एवस्तम्भा। तेषां द्रुमाणां स्कन्धाख्य शाखा एव वड़भी आच्छादनन्तु वलभीगृहाणामिति हलायुधः। यस्याः उपरि आच्छाद्यते सा वलभी। बिटपैः पल्लवैः छदांषि आच्छादनानि।

चामर द्वारा कुञ्ज परिमार्ज्जित करते हैं, एवं कस्तूरिका मृगी समूह उनके मृगमद सौरभ से कुञ्ज-भवन को सुगन्धयुक्त कर रहे हैं ॥२७॥

उस कुञ्ज समूह के चारों कोण में चार तरु हैं, उस तरु के उभय पार्श्व में दो-दो लतिका पुष्प-फलदलादि मण्डिता होकर उस तरुवर को वेष्टन पूर्वक जैसे एक-एक रत्नमय गृह में परिणत हो गये हैं। वृक्ष-लतादि द्वारा आच्छन्न स्थल का नाम ही कुञ्ज है ॥२८॥

एवम्विधैः सुन्दर सन्निवेशैः,
कुञ्जानि सर्वत्र वने व्रजेऽपि ।
विमानकारीणि विमानभानात्,
वैकुण्ठगानामपि लोभितानि ॥३०॥

तद्भित्तयः, तेषां गृहाणां भित्तयस्तथा द्वारश्च लतानां विशेष भङ्ग्या, तथाच भित्तिस्थले भित्ताकारतया लतानां स्थितिः । द्वार स्थाने द्वाराकारतया लतानां स्थितिः। पुष्पैः प्रालम्ब चूड़ा कलशानि तथाच प्रालम्ब चूड़ा कलसादि स्थाने पुष्पाणां प्रलम्वाद्याकारेण विकाशः । प्रालम्ब ऋजुलम्बि मुक्तादिमालावत् पुष्पानां स्थितिः, एवं चूड़ा कलसादि वत् ॥२९॥

एवम्विधैरुक्त प्रकारैः सन्निवेशैः स्तम्भादिभिः कुञ्जानि भान्तीति शेषः। कीदृशानि ? विमानेषु भाः कान्तयः प्रकाशा येषां तेषां देवानां। यद्वा। विमानानां ताः कान्तय स्तेषां विगतमानकारीणि वैकुण्ठगानां लोभितानीत्यत्रापि कारेणान्येषां कैमुत्यमानीतं ॥३०॥

वे सब कुञ्ज गृह का संस्थान किस प्रकार है, वह इस श्लोक में वर्णित है। वृक्ष समूह के स्थूल काण्ड समूह ही उस कुञ्ज भवन के स्तम्भ हैं। वृक्ष समूह की स्कन्ध नामक शाखा ही उस गृह के वड़भी हैं, अर्थात् काठाम है। जिसके ऊपर आच्छादन रहता है, एवं वृक्ष के विटप अर्थात् पल्लव समूह ही उस गृह का आच्छादन है। लता समूह की भङ्गी विशेष ही उस गृह की भित्ति एवं द्वार है, अर्थात् भित्ति है एवं द्वार के आकार में अवस्थित है। एवं पुष्प समूह प्रालम्ब अर्थात् ऋजुलम्बि मुक्तामाल आदि के समान एवं चूड़ा कलश आदि के समान विकसित हैं ॥२९॥

एवम्विध लतावितान का सुन्दर सन्निवेश है, स्तम्भादि द्वारा ही श्रीवृन्दावन में सर्वत्र केलि कुञ्ज समूह शोभित हैं। उस निकुञ्ज

वनानि कुञ्जानि लताद्रुमाश्च,
ये पक्षिणो ये पशवश्च वान्ये ।
क्षणान्मुकुन्देक्षण मात्रतः स्युः,
सर्वे प्रफुल्ला स्तदृते त्वफुल्लाः ॥३१॥

व्रजेषु नानाविध-सद्वनेषु नन्दीश्वरस्येश्वरकोण आरात् ।
खेलावनं यत्र रहस्य खेला खेलालसाभि र्दिविषद्भिरेष्या ॥३२

वनादयः कृष्णेक्षण मात्रतः क्षणादुत्सवात् प्रफुल्लाः स्युः तदृते ईक्षणं विना त्वफुल्ला म्लाना स्युः ॥३१॥

नानाविध सद्वनेषु मध्ये नन्दीश्वरस्येशान कोणे खेलावनं यत्र वने खे आकाशे लालसाभिः सह दिविषद्भि र्देवै रेष्या वाञ्छनीया कृष्णस्य रहस्य लीला । इषु इच्छायां ॥३२॥

समूह की शोभा स्वर्ग की शोभा विस्तारकारी देवतागण की शोभा को भी पराजित करते हैं । दूसरी बात क्या है, उस निकुञ्ज माधुरी श्रीवैकुण्ठवासियों की लोभनीय है ॥३०॥

किन्तु उस श्रीवृन्दावन के यावतीय वन, कुञ्ज, लता, तरु, पशु, पक्षी अथवा अन्य जो कुछ भी हैं, वे सब ही श्रीकृष्ण के क्षण मात्र दर्शनोत्सव से ही प्रफुल्ल होते हैं एवं क्षणमात्र अदर्शन से ही म्लान हो जाते हैं ॥३१॥

श्रीवृन्दावन में नाना प्रकार दिव्य वनराजि के मध्य में जो नन्दीश्वर पर्वत है, उसके ईशान कोण में खेलावन अर्थात् क्रीड़ा कानन अवस्थित है । उस कानन में श्रीकृष्ण की जो रहस्य लीला होती है, वह विमान विहारी देवगणों की वाञ्छनीया है ॥३२॥

यस्मादसौ श्रीयमुना व्रजेन्दो दिदृक्षयानुव्रजमाव्रजन्ती ।
नन्दीश्वरान्तेषु गवेषयन्ती बभ्राम तत्रासरला भवन्ती ॥३३॥

यत्रोदकादिग्रहणच्छलाद्यै-र्गोपीजना तेऽभिसरन्ती भूयः ।
गोपी प्रियोऽपिप्रवदन्ति गोपी घट्टं न घट्टं कुरुते स कं वा ॥३४

यस्मात् खेलनादसौ श्रीयमुनाकर्त्री व्रजेन्दोः श्रीकृष्णस्य द्रष्टुमिच्छया अनुव्रजं व्रजं व्रजं प्रति आव्रजन्ती आगच्छन्ती नन्दीश्वरस्यान्तेषु निकटेषु मध्येषु वा तां श्रीकृष्णं गवेषयन्ती । अतएव असरला वक्रा भवन्ती तत्र खेलावने बभ्रामा ॥३३॥

यत्र खेलावने उदकादि-ग्रहणच्छलाद्यै स्ते गोपीजना भूयो वारम्वारं अभिसरन्ति, गोपीप्रियः श्रीकृष्णोऽपि भूयोऽभिसरति अतः सर्वे जनास्तं खेलावनं गोपीघट्टं प्रवदन्ति स गोपीघट्टं कं वा जनं घट्टं दर्शन माधुर्य्येन चञ्चलं न कुरुते अपितु सर्वमेवं । घट्टं चलेन ॥३४॥

उस अपूर्व लीला के निमित्त ही सूर्य पुत्री श्रीयमुना श्रीव्रजकुल-चन्द्रमा श्रीकृष्ण के दर्शनाभिलाषिणी होकर व्रज में उनके पश्चादनुसरण करते हुए श्रीनन्दीश्वर के प्रान्त में एवं मध्य में उनका अन्वेषण करती रहती है, इस कारण से ही आप असरलता अर्थात् वक्रीभूता होकर उस क्रीड़ा कानन में श्रवण करती है ॥३३॥

उक्त क्रीड़ा-कानन में सलिलादि ग्रहण के छल से गोपीगण का आगमन बारम्वार होता रहता है, एवं गोपीप्रिय श्रीकृष्णचन्द्र भी बारम्बार आगमन करते रहते हैं। इसलिए लोक सकल उस खेलावन अथवा क्रीड़ा-कानन को गोपी-घट्ट कहते हैं। उस गोपी-घट्ट दर्शन दान कर किसको स्व माधुर्य्य से चञ्चल नहीं करता है ॥३४॥

श्रीकृष्ण केली द्युति विद्युतानां,
ब्रह्माण्ड सम्मण्डन-पण्डितानां ।
भाण्डार भाण्डं सविभाति यत्र,
भाण्डीर नामा द्रुम विद्रुमेत्यः ॥३५॥
यत्राखिलानामपि वल्लवीना,
मारामधामानि मनोरमानि ।
रम्यानिकामानि निकुञ्ज पुञ्जा,
मुञ्जाटवी मुख्य वनानि भान्ति ॥३६॥

यत्र गोपीघट्टे द्रुम त्रिद्रुमैरेभ्यो भाण्डीर नामा स वटो विभाति कीदृशः ? ब्रह्माण्डस्य सम्यक् मण्डने पण्डितानां श्रीकृष्ण केली द्युति विद्युतानां श्रीकृष्ण केलय एव द्युतयः कान्तय स्तै विशिष्टद्युतिमतां केलिस्थान रूपा रत्नानां भाण्डा भाण्डम् ॥३५॥

निकुञ्जानां पुञ्जा समूहो यत्र तथाभूता मुञ्जाटवी मुख्यो येषु वनेषु तानि वनानि यत्र भाण्डीरतटे भान्ति । कीदृशानि ? अखिलानां वल्लवीनामप्याराम धामानि । रमायाशोभयानि कामानि यथेप्सितानि यत्र यथेप्सित शोभा युक्तानि । निकामस्तुयथेप्सितमित्यमरः । श्लेषेण रमा लक्ष्मी स्तस्या निकामानि वाञ्छा विषयाणि ॥३६॥

उक्त गोपी घट्ट में द्रुम किशलय शोभि-भाण्डीर नामक वटवृक्ष है, जो ब्रह्माण्ड मण्डन पटु श्रीकृष्ण-केलि कान्तिमय केलिस्थान रूप रत्न भाण्डार का भाण्ड रूप में शोभित है ॥३५॥

उस भाण्डीर तट में निकुञ्ज पुञ्जशोभि तृणतरु प्रधान विविध वनराजि शोभित हैं । उस वन समूह यथेप्सित शोभायुक्त एवं लक्ष्मी देवी के वाञ्छित एवं निखिल व्रज गोपिका के मनोरम आराम धाम हैं ॥३६॥

स्व स्वाभिलाषेण गताश्च यत्रा,
लपन्ति नृत्यन्ति मिलन्ति तेन ।
कान्तेन कान्ताः कृतकेल्यनन्ता,
मनोरथो याति मनोरथं यत् ॥३७॥
वृन्दावनानां विलसद्वनानां वैकुण्ठकुण्ठीकर-वैभवानां ।
वृन्दावनं नाम वनं गुणश्री वृन्दावनं तत् कतमच्चकास्ति॥३८

यत्र वनेषु स्व स्वाभिलाषेण गता कृत केल्यनन्ताः कान्तास्तेन कान्तेन सह लपन्ति नृत्यन्ति मिलन्ति यदा मनोरथो मनोरथं याति । स्व स्वाभिलाषेण गतानां यो मनोरथः समनोरथान्तरं प्राप्नोति । तेषां वनानां तत्रत्य केल्यादीनां च माधुर्य्यादि दर्शनेन यत्र गतानां गमन कारण मनोरथादप्यन्य नानाविध मनोरथा भवन्तीत्यर्थः ॥३७॥

वृन्दायाः वनानां मध्ये तद्वृन्दावनं नाम नवं गुण श्रीसम्पत् वृन्दानां सम्भूतानां वनं रक्षणं यत्र तत् कतमत् सर्वोत्कृष्टतया चकास्ति ॥३८॥

अनन्त-लीला-कारिणी व्रजसुन्दरीगण स्व-स्व अभिलाप के अनुसार वहाँ पर गमन कर प्राणकान्त श्रीकृष्ण के साथ इच्छानुरूप कभी मधुरालाप करती हैं, कभी नृत्य करती हैं, कभी तो सम्मिलित होकर एक अप्राकृत सम्भोगानन्द का अनुभव करती हैं, सुतरां वे सब वन माधुर्य्य व लीला माधुर्य्यादि दर्शन के मनोरथ से वहाँ पर आने पर भी उन सबको छोड़कर और भी अनेकविध मनोरथ उपस्थित होते हैं ॥३७॥

जो वैकुण्ठ के वैभव को खर्व करता है। इस प्रकार महा वैभवशाली शोभनीय, श्रीवृन्दादेवी के वन समूहके मध्यमें श्रीवृन्दावन नामक वन ही गुण व शोभासम्पत् समूह का एकमात्र आधार स्वरूप सर्वोत्कृष्टता के साथ शोभित है ॥३८॥

यस्यास्त्यहो कज्ज्वल जात जाता,
समन्ततः सा परिखेव कृष्णा ।
नमज्जनान्मज्जनतो विशुद्धान्,
करोति या कृष्ण हृदस्तथापि ॥३६॥

पर्य्याप्त इन्दीवर मालकेव ससार हार प्रतिमेव देव्याः ।
वृन्दावनस्यासित-शाटिकेव विराजिते श्रीयमुना नदी सा ॥४०

यस्य वृन्दावनस्य समन्ततश्चतुर्दिक्षु अहो वितर्के किं कज्जलस्य जात समूहस्तज्जाता परिखा इव कृष्णा यमुना अस्ति। मज्जनतोऽपि नमज्जनान् अस्या माहात्म्यमज्ञात्वापि ग्लान्यादि दूरीकरणाय स्नानार्थं नम्रीकृत शिरः कायादि ये स्तथा भूतानपि जनाद् या यमुना विशुद्धान् करोति। तथा कृष्ण हृदः कृष्ण हृदयो येषां तथाभूताश्च करोति ॥३६॥

स श्रीयमुना देव्याः प्रतिमेव पर्य्याप्त नीलपद्म माला इव इन्द्रनीलमणि हार सदृशा इव श्रीवृन्दावनस्थ नीलशाटिक सा यमुना नदी विराजते ॥४०॥

अहो! उस श्रीवृन्दावन के चतुर्दिकमें कृष्ण सलिला श्रीयमुना कज्ज्वलराशि जात परिखा के समान शोभित है, श्रीयमुनाजी की महिमा को न जानकर भी जो लोक केवल शरीर की ग्लानि विदूरित करने की अभिलाष से स्नान के लिए मस्तक, अङ्गादि अवनमित करते हैं, श्रीयमुना उन सबको भी कृष्ण-हृदयगण के समान अर्थात् जिनके हृदय में श्रीकृष्ण विराजित हैं, तादृश कृष्ण भक्तगण के समान विशुद्ध करती है ॥३६।

वह श्रीयमुना नदी देवी प्रतिमा की भाँति, पर्य्याप्त प्रफुल्ल-नील पद्ममाला के समान, इन्द्रनीलमणि हार के तादृश, अथवा श्रीवृन्दावन की नील शाटी के तुल्य शोभित है ॥४०॥

सप्त व सिन्धुनपि सप्तलोकान् सप्तावृतीः सास्ति विभिद्य सौरी ।
वैकुण्ठ गोलोकगता भ्रमन्ति वृन्दावनं सेवितु मालवालं ॥४१॥

यस्या जले दूरगता गतेऽपि,
वृन्दावनस्यैव समन्ततः स्यात् ।
आवर्त्त लक्षं स्थिति लोभलक्षं,
यथा धनिद्वारि सुलोभिचित्तं ॥४२॥

सा सौरी यमुना सप्तसिन्धु सप्तलोक सप्तावृतो ब्रह्माण्डस्य पृथ्व्यादेः सप्तावृती विभिद्य वैकुण्ठादिगती भ्रमन्ती सती श्रीवृन्दावनं सेवितु कयारीति-प्रसिद्धमालवालमिवास्ति ॥४१॥

यस्या यमुनायाः जले दूरदेशादागते दूरदेशे गतेऽपि धनिनां द्वारि सुष्ठु लोभिनां चित्तमिव वृन्दावनस्यैव समन्ततः स्थितो लोभ लक्षं यस्य तादृशमावर्त्त लक्षः स्यात् । लोभिचित्तस्य यथा धनिद्वारतः दूर गमना गमने सत्यपि यथा धनि द्वार्य्येवावर्त्त लक्षं भ्रमण लक्षं भवेत् तथात्रापि घूर्या लक्षं भवेत् ॥४२॥

उस तपन तनया श्रीयमुना, सप्तसिन्धु, सप्तलोक एवं पृथिव्यादि सप्त-आवरण को भेद कर श्रीवैकुण्ठ एवं गोलोक धाम में भ्रमण करके भी जैसे श्रीवृन्दावन की सेवा करने की अभिलाष से ही आलवाल के समान विद्यमान है ॥४१॥

दूर देश गमन करे अथवा दूर देश से आगमन ही करे धनवान व्यक्ति के द्वार देश में अतिशय लोभी व्यक्तिगण के मन में जिस प्रकार असंख्य लोभ का आवर्त्त उदित होता है। उस प्रकार श्रीयमुनाजी के जल में श्रीवृन्दावन के चारों दिक् में अवस्थिति कर अनन्त लोभ युक्त असंख्य आवर्त्त विद्यमान हैं ॥४२॥

यस्या असौ श्यामरस प्रवाहः,
श्यामस्य तं श्यामरस प्रवाहं ।
उद्दीपयन्नेव निमज्जयन् स्यात्,
स्वस्मिंश्च तस्मिंश्च तदालिभिस्तं ॥४३॥

यस्याः श्यामवर्ण जल प्रवाह श्यामस्य श्रीकृष्णस्य श्यामरस प्रवाहं शृङ्गाररस प्रवाहं उद्दीपयन्नेव उद्दीप्तभावं प्रापयन्नेव तस्मिन् श्यामरसे शृङ्गाररसे स्वस्मिंश्च स्वजलप्रवाहे च तस्य श्रीकृष्णस्यालिभिः सहितं श्रीकृष्णं निमज्जयन् निमग्नी कुर्वन् स्यात् भवेत् । प्रवाह पक्षे । श्यामरस प्रवाहजलप्रवाहं स्वस्मिन् जल प्रवाह एव उद्दीपयन्नेव निमज्जयन् स्यात् तथाच यमुना प्रवाह दर्शनेन व्रजसुन्दरीभिः सह श्रीकृष्णस्य शृङ्गाररस वृद्धि पूर्वक शृङ्गाररसे मग्नता स्यात् पक्षे जल प्रवाहस्य वृद्धि पूर्वक जल प्रवाहे निमग्नता स्यात् ॥४३॥

उस यमुना का श्यामल जल प्रवाह श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के श्याम-रस प्रवाह अर्थात् शृङ्गार-रस प्रवाह को उद्दीपित कर उस श्याम-रस में अथवा शृङ्गार-रस में एवं स्वीय जल प्रवाह में कृष्ण सुखमयी व्रजसुन्दरीगण के साथ श्रीकृष्ण को भी निमज्जित करती है । फलतः जल प्रवाह जिस प्रकार अपने में प्रवाह को उद्दीप्त कर उसमें अपने को निमग्न करता है, उस प्रकार यमुना प्रवाह दर्शन से व्रजाङ्गनागण के साथ श्रीकृष्ण के शृङ्गार-रस वृद्धि प्राप्त होकर उस शृङ्गार-रस में श्रीकृष्ण निमग्न हो जाते हैं ॥४३॥

यस्या प्रवाहेष्वपि जीव जाता,
मुहुर्मु हुर्मस्तकमूर्द्धयन्ति ।
दिदृक्षवः श्यामरसेषु मग्ना,
श्यामागमाशङ्किधियेव मुग्धाः ॥४४॥

यस्याद्वयोः सुन्दर पार्श्वयो स्तः,
सोपानमाले वररत्न जाले ।
शोभाख्य देव्या इव दन्त पङ्क्ती,
श्रीकृष्ण सुस्मारक-शुद्ध-शक्ती ॥४५॥

यस्याः प्रवाहेषु श्यामस्य श्रीकृष्णस्य रसेषु च मग्ना मुग्धाश्च जीवजाताः कच्छपादयः श्यामस्य श्रीकृष्णस्यागमनेआशङ्का विशिष्टा धियो येषां ते श्रीकृष्ण दिदृक्षवः मुहु र्मस्तक मूद्ध्र्वयन्ति जलोपरि कुर्व्वन्ति ॥४४॥

वर रत्नानां जाल समूहो ययो स्तादृश सोपान समूहे शोभा देव्या दन्त पंक्ती इव कृष्ण स्मारक शक्ता इव च यस्या पार्श्वद्वये स्तः ॥४५॥

उस यमुना के जल प्रवाह में कच्छपादि जलचर जीवगण भी श्रीकृष्ण-रस में ऐसा मग्न व मुग्ध है कि श्रीकृष्ण का आगमन हुआ है, इस प्रकार आशङ्का कर उनको दर्शन करने की अभिलाष से मुहुर्मु हुः जल के ऊपर मस्तक उत्तोलन करते हैं ॥४४॥

उस सुन्दर तटशालिनी यमुना के उभय पार्श्व में उत्तम-रत्न राजि निर्म्मित सोपान माला शोभा नाम्नी देवी की दन्त पंक्ति के समान एवं श्रीकृष्ण की शुद्ध स्मारक शक्ति के तुल्य शोभित है । अर्थात् उस सोपान माला की अलौकिकी ऐसी शक्ति है, कि जिसके दर्शन श्रवण मात्र से ही श्रीकृष्ण एवं उनकी मधुमयी लीला समूह भी स्मरण पथ में समुदित होते हैं ॥४५॥

सोपान जातौ मणिजौद्विपार्श्वे,
मध्ये च यस्याः सलिलप्रवाहः ।
श्रीकृष्ण वेणुध्वनिपानतोऽमी,
भवन्ति सद्यो विपरीत रूपाः ॥४६॥

सर्वाणि तस्याः पुलिनानि चन्द्र चूर्णानि यच्चन्द्रिकयान्वितानि ।
श्रीरास लीलारस सौभगानि नामानि येषां तदवेक्षणानि ॥४७

अमी सोपान समूहः सलिल प्रवाहाः विपरीत रूपा पाषाण मणयो द्रवरूपाः द्रवमय जल प्रवाहाः पाषाणरूपाः भवन्ति ॥४६॥

तस्याः यमुनायाः सर्वाणि पुलिनानि चन्द्रानां चूर्णानि वालुकानां शुक्लांशे चन्द्र चूर्णानि उत्प्रेक्षितानि । तत्रापि यच्चन्द्रिकया यस्य चन्द्रस्य चन्द्रिकया मिलितानि रासलीला रसेन सौभगानि येषां पुलिनानां नामानि तदवेक्षणानि तस्य रासलीला रसस्यावेक्षण यतः तानि ॥४७॥

इस प्रकार यमुना के उभय कुल में मणि निर्म्मित सोपान श्रेणी शोभित हैं, मध्ये जल प्रवाह प्रवाहित है । श्रीकृष्ण की वेणु ध्वनि श्रवण करने से ही उस सोपान समूह व जल प्रवाह तत् क्षणात् विपरीत भाव धारण करते हैं, अर्थात् पाषाणमय मणि समूह द्रवरूप में एवं द्रवमय जल प्रवाह पाषाण रूपमें प्रतीत होते हैं ॥४६॥

उस यमुना के सिकतामय पुलिन समूह चन्द्र चूर्ण से परिपूर्ण होने पर भी ज्योत्स्ना राशि द्वारा उद्भासित हैं, एवं श्रीरासलीला रस से अतीव सौभाग्यशाली परन्तु उक्त पुलिन नियम के नामानुसार ही उस लीला रस का अनुसन्धान प्राप्त होते हैं ॥४७॥

मध्येऽपि तस्याः पुलिनानि येषु,
कुञ्जानि कुत्रापि लसन्ति तेषां ।
विहङ्गमा अङ्गन उल्लसन्ति,
गोविन्द सन्दर्शनलालसातः ॥४८॥

वृन्दावनस्यैव समन्ततोऽस्याः सर्वेऽवतारा इव तेऽवताराः ।
स्वप्रेमदाः स्व स्मरणेन किन्तु सद्यो व्रजेन्दोऽपि चित्तमत्र ॥४९॥

तस्याः प्रवाह मध्येऽपि पुलिनानि सन्ति । येषु पुलिनेषु कुत्रापि स्थले कुञ्जानि लसन्ति । येषां कुञ्जानामङ्गने विहङ्गमा उल्लसन्ति ॥४८॥

वृन्दावनस्य समन्ततः अस्या यमुनायाः सम्बन्धिनः ते पूर्वोक्ताः वृक्षादयः भगवतोऽवतारा इवावताराः, अवतार साधर्म्यमाह । येषां स्मरणेन स्वेषु प्रेमदाः । तु पुनः किं वक्तव्यं व्रजेन्दोरपि चित्तं सद्योऽत्र जने प्रेमदोभवेदिति शेषः । एतदिति पाठे एतत् प्रेमदं ॥४९॥

और भी उस श्रीयमुना प्रवाह के मध्य में जो सब पुलिन विद्यमान हैं, उसके किसी-किसी स्थल में बहुतर कुञ्ज सुशोभित हैं, एवं उस कुञ्ज समूह के अङ्गन में बहुविध विहङ्ग निचय श्रीगोविन्द दर्शन लालसा से उल्लास प्रकाश कर रहे हैं ॥४८॥

श्रीवृन्दावन के चतुर्द्दिक में इस यमुना सम्बन्धीय जो सब वृक्षादि हैं, तत् समुदय ही श्रीभगवान् के अवतार के समान अवतीर्ण हैं, अवतार का साधर्म्य यह है कि–उन सबको स्मरण करने पर जिस प्रकार वे सब स्वकीय प्रेमदान करते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षादि को स्मरण करने से भी वे सब स्वकीय प्रेमदान करते हैं। कहने का क्या व्रजकुल चन्द्रमा श्रीकृष्ण के चित्त भी तत् क्षणात् उस स्मरणकारी-जन के प्रति प्रेमद होता है ॥४९॥

वृन्दावनन्तं परितस्तटेऽस्या,
आम्रादि वृक्षावलि मण्डली या ।
पूर्वास्त्यपूर्वासकलान्तरान्त,
निकुञ्जशाला विधु दृग्रसालाः ॥५०॥
द्राक्षादिकानां कुसुमावलीनां,
रम्भा समूहस्य च मण्डलानि ।
क्रमेण मध्ये कनकस्य भूमौ,
रत्नाचल स्तत्र च कल्पकुञ्जम् ॥५१॥

वृन्दावनान्तं वृन्दावन मध्येऽस्या यमुनाया स्तटे परितः सर्वदिशु या आम्र पनसादि वृक्षा वल्लीनां मण्डली अस्ति, सा कीदृशी? पूर्वा अनादि सिद्धा अपूर्वा अद्भुता अधुनोत्पन्ना वा। सकलानां वृक्ष मण्डलीनामन्तरान्तर्मध्ये मध्ये निकुञ्जशालाः सन्ति। विधोः श्रीकृष्णस्य दृशाः रसालाः विधुरिव दृशोरसाला आह्लाद जनकाश्च ॥५०॥

वृक्ष मण्डली मध्ये सा निकुञ्जशालास्तासां परिपाटी माह। क्रमेण द्राक्षादीनां मण्डली यथा। आदौ द्राक्षादि लता मण्डली ततो

श्रीवृन्दावन मध्ये यमुना तट पर जो सब आम्र पनस प्रभृति वृक्षादि की मण्डली हैं, वे सब ही अनादि सिद्ध अथच अपूर्व अर्थात् अद्भुत एवं अधुनोत्पन्ना हैं। उक्त वृक्ष मण्डली के वीच-वीच में श्रीकृष्ण की नयनानन्दजनक वहु निकुञ्जशाला शोभित हैं ॥५०॥

वृक्ष मण्डली के मध्य-मध्य में जा निकुञ्जशाला है, उनकी परिपाटी यह है कि–प्रथम द्राक्षादिलता मण्डली है, पश्चात् पुष्पलता की मण्डली है, तत् पश्चात् रासमण्डली है, उसके मध्य में जो स्वर्णमयी भूमि है, उसके ऊपर इन्द्रनीलमणि पद्मरागमणि प्रभृति

कुत्रादि दीर्घाः समसूत्रपाता,
इव क्वचिन्मण्डल-बन्धनेन ।
द्वित्राः क्वचिच्छ्रेणय एक जात्या,
कुत्रापि नानाविध जातिभिश्च ॥५२॥
आम्रादिकानां क्वच पञ्चषा या,
ऊर्द्ध्वेण शाखादिभि रप्यन्यूनाः ।
ता नातरिक्ताः सुखकृत्रिमा किं,
पुष्पावलीनामपि तादृशा स्ताः ॥५३॥

पुष्पानां मण्डली ततोरम्भा मण्डली तन्मध्ये कनकी भूमी ततोरत्ना भूमौ इन्द्रनीलमणिपद्मरागमण्यादिमयपर्वत स्तदुपरिकल्पवृक्षकुञ्जम्॥५१

कुत्रापि द्राक्षादिकानां श्रेणयः समसूत्रपाता इव दीर्घा दीर्घाकाराः क्वापि मण्डलाकारेण । क्वापि एक जात्या क्वापि नाना जाति र्भिद्वित्राश्रेणयः समुल्लसन्तीति चतुर्थश्लोकेन अन्वयः ॥५२॥

आम्रादीनां श्रेणय उद्र्ध्वेण शाखादिभिरपि न न्यूनाः न अतिरिक्ताश्च समानाः इत्यर्थः । सुखाय कृत्रिमाः किं कृत्रिमकृताः ।

मणिमय पर्वत है, उस मणि-पर्वत के ऊपर में ही कल्पतरु कुञ्ज विद्यमान है ॥५१॥

कहीं पर द्राक्षादि लता समूह समसूत्रपात के समान दीर्घाकार में श्रेणीवद्ध हैं, कहीं पर मण्डलाकार में शोभित हैं। कहीं पर एक जातीय हैं, और कहीं पर नाना जातीय लता वल्ली दो श्रेणियों में विभक्त होकर शोभित हैं ॥५२॥

वहाँ पर आम्रादि वृक्ष की पाँच छे श्रेणी के उर्द्धभाग की शाखा प्रशाखा समूह भी न्यून नहीं हैं एवं अतिरिक्त भी नहीं हैं। अर्थात् समान आकार में शोभित हैं। सुख दर्शन निमित्त ही उक्त

तमालमाला अपि तादृशस्ताः कुत्रापि नानाविध पादपानां ।
वनं धनीभूतमतीव चित्रं विपक्षदृष्टेरपि दुष्प्रवेशम् ॥५४॥

मध्ये निकुञ्जाः क्वचिदेव,
तेषां कुत्रापि रत्नोत्तममन्दिराणि ।
कुत्रापि वृन्दापरिवारशालाः,
सर्वासु दिक्ष्वेव समुल्लसन्ति ॥५५॥

वृक्षाद्याः यथा एकाकारा भवन्ति तथात्र किं नेत्यर्थः । किन्तु नित्या एव । पुष्पावलीनां ताः श्रेणय स्तादृशः समानाः सुखरूपाश्च ॥५३॥

विपक्षानां दृष्टे यदि प्रवेशो न भवेत् कुतो विपक्षानाम् ॥५४॥

तेषां वनानां मध्ये क्वचिन्निकुञ्जाः क्वापि रत्न मन्दिराणि । सर्वासुदिक्षु वृन्दापरिकराणां शाला: समुल्लसन्ति ॥५५॥

वृक्ष श्रेणी को इस प्रकार समान आकार में कृत्तिम भाव से निर्म्माण किया गया है, ऐसा नहीं है, कारण उक्त वृक्ष श्रेणी भी नित्य अनादि सिद्ध हैं, यहाँ तक कि पुष्पावलि भी तादृश समान सुख-जनक रूप से सुशोभित हैं ॥५३॥

कहीं पर तमाल तरु समूह तादृश समानाकार में श्रेणीवद्ध हैं, और कहीं पर नानाविध वृक्षराजि का वन अतीव धनीभूत है। आश्चर्य्य का विषय है–विपक्ष तो दूसरी बात है, विपक्ष की दृष्टि की उसमें प्रविष्ट नहीं हो सकती है ॥५४॥

ये सब वनराजि के मध्ये कहीं पर निकुञ्ज समूह हैं, कहीं पर मनोहर रत्न मन्दिरावली हैं, कहीं पर वृन्दादेवी के परिकरगण के भवन निचय हैं, इस प्रकार सब ओर सुन्दर रूप से शोभित हैं ॥५५॥

वृन्दावनं लौकिकवद् यदीदं,
तथापि लोकोत्तरलोकहारि ।
राज्ञो यथात्यन्तविलासिनः स्या,
दारामरम्यत्वमति-प्रसारि ॥५६॥

षण्णामृतूणां पृथगेव षट्चेत् पदानि स्तत् स्वगुणैः स यत्र ।
वृन्दावनेन्दुः प्रति वासरं तत् सर्वर्त्तु लीलानुभवं तनोति ॥५७

यद्यपि इदं वृन्दावनं लौकिकवनवत् तथापि लोकोत्तरवर्त्ति लीनानां हारि मनोहारि । अत्यन्तविलासिनोराज्ञो यथातिप्रसारि आरामे रम्यत्वं उद्याने एवात्यासक्तिताः तथा श्रीकृष्ण तत् परिकराणामिति ॥५६॥

तत्तत् स्वगुणैः तेषां तेषामृतूनां स्व स्वगुणैः षण्णामृतूनां षड़ेव पृथक् पदानि स्थानानि पृथक् समयानि यद् यदपि तद् यत्र वृन्दावने स वृन्दावनेन्दुः श्रीकृष्णः प्रतिदिनं तत् प्रसिद्धं सर्वर्त्तु लीलानुभवं तनोति ॥५७॥

यद्यपि इस वृन्दावन प्राकृत् वनवत् प्रतीत होता है, तथापि यह लोकोत्तरवर्त्ति लोकगण के भी अर्थात् श्रीवैकुण्ठवासिजनगग के चित्त हरण करता है, अत्यन्त विलासी राजा को जिस प्रकार प्रमोद उद्यान में अतिमात्र विहाराशक्ति देखी जाती है, उस प्रकार श्रीकृष्ण तदीय परिकरगण को भी उस श्रीवृन्दावन में ही विहाराशक्ति की पराकाष्ठा लक्षित होती है ॥५६॥

यद्यपि देश व काल भेद से षड़्-ऋतु स्व-स्व गुण के साथ पृथक् समय में प्रकाश पाते हैं, किन्तु श्रीवृन्दावन में श्रीवृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण प्रतिदिन ही प्रसिद्ध सकल ऋतु में विहित लीला का अनुभव करते हैं ॥५७॥

तथापि सर्वर्त्तव एव नित्यं वृन्दावनेऽस्मिन् प्रणयन्ति सेवां।
येषां प्रसूनैः कृतभूषणास्ता वृन्दावनेन्दुं प्रणयन्ति गोप्यः ॥५८

वृन्दावनेन्दोः सकल प्रियाणां,
वृन्दावनेऽस्मिन् विलसन्ति कुञ्जाः।
ब्रह्मानुभूतीरपि मोचयन्ति,
येषां द्युतीनां कलयापि गुञ्जाः ॥५६॥

तथा सर्वे ऋतवोऽपि वृन्दावन एव नित्यं सेवां प्रणयन्ति, प्रकर्षेण नयन्ति प्रापयन्ति सेवामेवाह येषामृतूनां प्रसूनैः कृतभूषण स्ता गोप्यः वृन्दावनेन्दुं प्रणमन्ति सुखयन्ति ॥५८॥

येषां कृष्णप्रियाकुञ्जानां गुञ्जा अपि द्युतीनां कलया अंशेन ब्रह्मानुभुती मोचयन्ति। अपि काप्यन्यानपि मोचयन्ति ॥५६॥

कारण इस श्रीवृन्दावन में सकल ऋतु ही नित्य सेवा परिपाट्य का विधान करते रहते हैं। गोपाङ्गनागण भी उन सब ऋतुजात कुसुम स्तवक से विभूषिता होकर वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण के नित्य आनन्द विधान करते रहते हैं ॥५८॥

इस श्रीवृन्दावन में वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण की सकल प्रियागण के कुञ्ज विद्यमान हैं, उस सब कुञ्ज के गुञ्जारत्तिपरिमाणस्थान भी स्वीय ज्योतिकला से दूसरी बात क्या–ब्रह्मानुभूति को भी निरस्त करते हैं ॥५६॥

वृन्दावनेऽस्मिन् पशु पक्षिणो,
ये वृक्षालताद्या अपि यत्र तत्र ।
सर्वेसदा सम्मुखयन्ति तस्मिन्,
वृन्दावनेन्दो रुदयोऽस्ति यस्मिन् ॥६०॥

एकस्तु जात्यापि स कल्प वृक्षः परेगुणैरेव न जातिरूपैः ।
तथापि वृन्दावननाथवत्ते लीलानुसारेथ गुणोदयाः स्युः ॥६१॥

अस्मिन् नो दृष्टि गोचरेवृन्दावने यत्र तत्रापि स्थिताः पश्वादयः सर्वे सदा तस्मिन् श्रीवृन्दावने सन्मुखयन्ति सन्मुखं कारयन्ति । कोऽसौवृन्दावनं यस्मिन् वृन्दावने वृन्दावनेन्दोरुदयोऽस्ति । तथा च वृन्दावनीया यत्र कुत्रस्थाः पश्वादयः सेविताः सन्तः श्रीकृष्ण सहित वृन्दावने सन्मुखयन्ति ॥६०॥

वृन्दावने सः प्रसिद्धः कल्पवृक्षः जात्या एकोऽपि परे वृन्दावनस्था वृक्षा गुणैरेव कल्पवृक्षाः नतु जातिरूपै स्तथापि वृन्दावननाथः सामान्यतो नराकारोऽपि लीलानुसारेणानन्तसखा प्रेयस्यादीनां साधक भक्तानाञ्चाभिलाषपूरण द्वारा भक्ताभिलाष पूरकत्वादि गुणानामुदयो

परिदृश्यमान इस वृन्दावन के जहाँ तहाँ जो सब पशु-पक्षी एवं जो सब वृक्ष लतादि हैं वे सब ही जिस स्थान में वृन्दावनचन्द्र का उदय होता है, सर्वदा उस ओर अभिमुख होकर रहते हैं । अर्थात् श्रीवृन्दावन में स्थावर जङ्गमादि समस्त जीव ही जहाँ पर ही अवस्थान करे,वृन्दावनेन्दु श्रीकृष्ण को समुख में रखकर ही अवस्थान करते हैं, कदाच उनको पृष्ठ प्रदर्शन नहीं करते हैं ॥६०॥

प्रसिद्ध कल्पवृक्ष एवं वृन्दावनस्थ वृक्ष एक ही जाति के हैं । केवल जाति में जो एक हैं, ऐसा नहीं है, परन्तु गुण में भी एक ही प्रकार हैं । तथापि वृन्दावननाथ श्रीकृष्ण जिस प्रकार सामान्यत

वृन्दावने यद्यपि कल्पवृक्षाः,
सर्वे तथाप्येक उदार गीतः ।
यस्यातुले यत्र तले तदन्त,
स्तन्मञ्जु कुञ्जे मणिमन्दिरं तत् ॥६२॥

यत्र तथाभूतो यथा भवति तथैव लीलानुसारेण कल्पवत् गुणाना मुदयो येषु ते तथाभूताः स्युः एवं वृक्षाणां भक्ताभीष्ट पूरकत्वञ्च ज्ञेयम् ॥६१॥

एक एक कल्पवृक्ष उदारवत् गीतः । तस्य कल्प वृक्षस्यातुले तले तल प्रदेशे तदन्तस्तस्य तलस्यान्तर्मध्ये तत्तस्मिन्मञ्जु कुञ्जे तत् प्रसिद्धं मणिमन्दिरम् ॥६२॥

नराकार में प्रतीत होने पर भी लीलानुसार अनन्त सखा प्रेयसी प्रभृति की एवं साधक भक्तगण की अभिलाष पूरण करते हैं । इससे भक्त वाञ्छापूर्णकारी आदि गुणों का उदय दृष्ट होता है, उस प्रकार वृन्दावनस्थ वृक्ष समूह में कल्प वृक्ष के समान भक्ताभीष्ट प्रपूरक गुण आदि का उदय सूचित होता है ॥६१॥

श्रीवृन्दावन में यद्यपि इस प्रकार असंख्य कल्पवृक्ष हैं, तथापि वे सब वृक्षा एक मदान् वृक्ष रूप में कीर्त्तित होते हैं, उस कल्प वृक्ष के निम्न देश में जो मञ्जु कुञ्ज हैं, उसमें ही प्रसिद्ध मणि मन्दिर शोभमान है ॥६२॥

उद्ध्र्वोद्ध्र्वं गेहोपरि गेहमेवं तत् पञ्चषड़ाष्ट-नवातिचित्रं ।
सर्वत्र मध्ये वरकर्णिकावत् समन्ततोष्टौ दलवत् प्रकोष्ठाः ॥६३॥

परे परेऽन्ये च तथैव कोष्ठाः,
सेवापराणां शयनादि निष्ठाः ।
तन्मन्दिरस्यातुल सौभगस्य स्युः,
प्राङ्गणेऽष्टावपि मन्दिराणि ॥६४॥

मणिमन्दिरस्य उद्ध्र्वोद्ध्र्वं गेहस्योपरिपञ्चषड़ाष्ट नवादि संख्यकं गेहमतिचित्रं पञ्च च षड़् च पञ्चषां सर्वत्र मध्ये गृह मध्ये प्रदेशे कर्णिकावत् कर्णिका युक्तं कर्णिकायाः समन्ततः सर्वदिक्षु अष्ठ दलादि तद्वत् सर्वे प्रकोष्ठाः तथाच श्रीराधाकृष्णयो रूपवेशाद्यर्थं कर्णिकारं तन्मुख्य सखानामुपवेशाद्यर्थं सर्वं प्रकोष्ठे मणिमय पद्मस्याष्ठ दलालि ॥६३॥

कल्पावृक्षाधोवर्त्ति श्रीकृष्ण मन्दिरस्य परे परे सेवापराणां शयनादि निष्ठा निष्पत्ति यंत्र तथाभूतास्तथैवान्ये कोष्ठा सन्ति । अतुल सौभगस्य पूर्वोक्त तन्मन्दिरस्य प्राङ्गनेऽष्ठौ मन्दिराणि सन्तीतिशेषः ॥६४

उस मणि मन्दिर के ऊपर गृह के ऊपर गृह शोभित है, यह अतीव आश्चर्य्य का विषय है । इस प्रकार पाँच छै, आठ, नौ, पर्य्यन्त गृह उपर्यु परि अवस्थित है, वे सब गृह के मध्यप्रदेश जैसे पद्म के कर्णिकार के समान है, एवं उसके सब दिक् में पद्म के अष्ट दल के तुल्य आठ मणिमय प्रकोष्ठ विद्यमान हैं । श्रीराधाकृष्ण के उपवेशन के लिए ही जैसे कर्णिकार एवं उनकी मुख्य सखीगण के उपवेशन आदि के निमित्त ही जैसे अष्टदल के समान अष्ठ प्रकोष्ठ विराजित हैं ॥६३॥

कल्पवृक्ष के अधोवर्त्ती श्रीकृष्ण मन्दिर के पश्चात्-पश्चात् सेवा परायणा सखीगण के शयन आदि निष्पत्ति के लिए अन्य प्रकोष्ट समूह विद्यमान हैं, और उक्त अतुल सौभाग्यशाली मन्दिर के प्राङ्गण में और भी आठ मन्दिर विराजित हैं ॥६४॥

तान्यष्ट दिग्गानि सुमध्यगन्तत्,
स्वकीयशाखादिभिरेव नित्यं ।
सवाङ्केषु सङ्गोपयते द्रुमोऽसौ,
लीलानुकूलेभ्य ऋते जनेभ्यः ॥६५॥

कल्पागकुञ्जं नव मन्दिरं तत् समन्तत स्तस्य परेऽष्ट कुञ्जाः ।
तथैव सर्वे नव मन्दिरा स्ते प्रत्येकमन्येऽपि ततः परेऽन्ये ॥६६

तान्यष्ट मन्दिराण्यष्ट दिग् गतानि तथा तन् सुमध्यगं मन्दिरं च असौ द्रुमः कल्पवृक्षः स्वकीय शाखादिभिः खाङ्केषु संगोपयते । केभ्यो लीलानुकूलेभ्यो जनेभ्यो ऋतेविना ये जना स्तेभ्यः ॥६५॥

तन् पूर्वोक्तं कल्पागकुञ्जं कल्पाधकुञ्जं । नव संख्यक मन्दिर युक्तं । तस्य समन्ततः परेऽष्ट कुञ्जाः । प्रत्येकं ते पूर्वोक्ताः सर्वेऽष्ट कुञ्जाः नवमन्दिरा. तथैव कल्पवृक्षाधनवमन्दिरवन् । ततोऽष्ट कुञ्जात् परेऽन्येऽपि कुञ्जाः पूर्ववत् नवमन्दिराः सन्तीति शेषः ॥६६॥

उस अष्ट मन्दिर के अष्टदिक में अवस्थित उस सबके मध्यस्थल में जो मन्दिर है, उक्त कल्पवृक्ष स्वीय शाखा प्रशाखा प्रभृति के द्वारा स्वीय अङ्क में उस मन्दिर को लीला प्रतिकूल-जन अर्थात् विपक्षजन-गण से नित्य सङ्गोपन करते रहते हैं ॥६५॥

पूर्वोक्त कल्पवृक्ष के अधोदेश में जो कुञ्ज विराजमान है, वह नव संख्यक मन्दिर विशिष्ट है, एवं उस कुञ्ज के बाद चारों ओर और भी अष्ट कुञ्ज विराजित हैं, उक्त अष्ट कुञ्ज के प्रत्येक ही कल्पवृक्ष के निम्न देशस्थ मन्दिर के समान नव मन्दिर विशिष्ट हैं। अनन्तर वह अष्ट कुञ्ज के बाद और भी जो सब कुञ्ज हैं, उक्त समस्त कुञ्ज भी पूर्ववत् नव मन्दिर युक्त हैं ॥६६॥

यत् कुञ्जराजं वृत-कल्पवृक्षं वृन्दावनेशा लसितालयं तत् ।
ततः सखीनामथ किङ्करीणां समन्तत् स्तत् परतः क्रमेण ।।६७
सर्वत्र मध्ये वर मन्दिरं यद् यूथेश्वरी तत्र गणेश्वरी वा ।
कान्तेन साकं यदि राजते तत् तदालय स्तत् पर मन्दिरेषु।।६८

उक्त मन्दिरेषु यूथेश्वर्य्यादि स्थितौपरिपाटी माह । कल्पवृक्षावृतं यत् कुञ्जराजं तत् वृन्दावनेशाया: श्रीराधाया लसितालयं क्रीड़ालयं । ततस्तस्मादालयात् परत श्चतुर्दिक्षु सखी किङ्करीनामालयम् ।।६७।।

कान्तेन सह यूथेश्वरी वरमन्दिरे यदि राजते तत्तदालयस्तासां यूथेश्वरीणां सख्य: तत्तस्मात् श्रीकृष्ण सहित यूथेश्वरी युक्त मध्यस्थ वर मन्दिरात् परमन्दिरेषु स्थिता भवन्ति ।।६८।।

अनन्तर उक्त मन्दिर समूह में यूथेश्वरी प्रभृति के अवस्थान परिपाट्य भी कथित हो रहा है । कल्पवृक्ष वृत जो कुञ्जराज है, वह वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा की क्रीड़ा भवन है । उस क्रीड़ा भवन के चारों ओर यथा क्रम से सखी एवं किङ्किरीगण के आलय विद्यमान हैं ।।६७।।

सर्वत्र मध्यस्थल में जो श्रेष्ठ मन्दिर है, उसमें यूथेश्वरी व गणेश्वरी अवस्थान करती हैं । जब कान्त के साथ अर्थात् श्रीकृष्ण के साथ यूथेश्वरी उस वर मन्दिर में विराज करती हैं, तब उस यूथेश्वरीगण की सखीवृन्द मध्यवर्त्ती उस वर मन्दिर से परवर्त्ति मन्दिर समूह में अवस्थान करती हैं ।।६८।।

स कल्पवृक्ष स्तदधो निकुञ्जं,
तन्मन्दिराण्यप्यतिचित्रकानि ।
यावन्मुकुन्दप्रियर्येप्सितानि,
भवन्ति तावन्ति न ता विदन्ति ॥६९॥

गोविन्दभूमीति पुराणगीतं यद्योग पीठाख्यमपीह तन्त्रे ।
श्रीराधया श्रीविधुयोगधाम श्रीकुञ्जराजं निगदाम नाम ॥७०॥

स कल्पवृक्ष स्तत्तले कुञ्जं, कुञ्जमध्ये मन्दिराणि एतानि सर्वाण्येवाति चित्राणि अतिशयेन मनोज्ञानि तत्र मन्दिराणां संख्यातीत त्वमाह । यावत् संख्यया मुकुन्द प्रियाभिरीप्सितानि यावन्ति मन्दिराणि भवन्ति तावन्ति तावत् संख्यकानि तासां यूथेश्वर्यादीनां मन्दिराणि ता यूथेश्वर्यादयो न विदन्ति कुतोऽन्ये ॥६९॥

कुञ्जराजत्वेनोक्तस्य शास्त्रोक्त संज्ञामाह । यत् गोविन्द भूमीत्याख्यया पुराणेषु गीतं । यत् तन्त्रे योगपीठे त्याख्यं तत् श्रीराधया सह श्रीविधोः श्रीकृष्णस्य योगधाम मिलनस्थानम् तत् श्रीकुञ्जराज मितिनाम वयं निगदाम ॥७०॥

उस कल्पवृक्ष के तलदेश में कुञ्ज है, कुञ्ज के मध्ये मन्दिर समूह अतीव विचित्र हैं। उस मनोहर मन्दिर समूह इस प्रकार ही संख्यातीत हैं कि–कृष्णकान्ता व्रजाङ्गनागण जितने संख्यक मन्दिर की इच्छा करती हैं, उतनी संख्यक मन्दिर ही प्राप्त करती हैं, ऐसा कि यूथेश्वरीगण के कितने हैं, यूथेश्वरीगण भी उसको नहीं जानती हैं, दूसरे की बात ही क्या है ॥६९॥

पुराण में जो गोविन्द भूमि नाम से परिगीत है। तन्त्र में जो 'योगपीठ' नाम से कथित है, वह ही श्रीराधा के साथ श्रीकृष्णचन्द्र का मिलन स्थान है, उसको ही हम सब श्रीकुञ्जराज नाम से अभिहित करते हैं ॥७०॥

यद्दक्षिणे राजति राजकेली,
दोलस्थली याऽति विचित्र-शिल्पा ।
'आनन्द वृन्दावन' एव यस्याः,
स्वरूप शोभातिशयेन रस्या ॥७१॥
तद्दक्षिणे दूरत एव किञ्चित्,
श्रीस्वामि-गोविन्दपदे सरोऽस्ति ।
समन्ततो यस्य निकुञ्जपुञ्जाः,
येषूल्लसन्ति भ्रमरालिगुञ्जाः ॥७२॥

यस्य कुञ्जराजस्य दक्षिणे राज्ञइव केली यत्र सा दोलस्थली राजति या दोलस्थली अतिविचित्रशिल्पा । यस्याः स्वरूपशोभा आनन्दवृन्दावनचम्प्वाख्य ग्रन्थेऽतिशयेन रस्या ॥७१॥

तद्दक्षिणे किञ्चिद् दूरे श्रीस्वामिनो गोविन्दस्य पदे स्थाने गोविन्दकुण्डाख्य सरोऽस्ति । यस्य समन्ततः निकुञ्जस्य पुञ्जाः सन्ति येषु कुञ्जेषु भ्रमरादीनां गुञ्जाः शब्दाः उल्लसन्ति ॥७२॥

उस कुञ्जराज के दक्षिण दिक् में श्रेष्ठ क्रीड़ा-भूमि दोलस्थली विराजित है । यह दोलस्थली अतिशय विचित्र शिल्पा है, एवं इसकी स्वरूप शोभा की अपूर्व माधुरी 'आनन्द वृन्दावन चम्पू' नामक ग्रन्थ में विशद भाव से आस्वादनीया है ॥७१॥

उस दोलस्थली के दक्षिण में कुछ ही दूर पर 'श्रीगोविन्द कुण्ड' नामक श्रीकृष्णका एक सरोवर है, उसके ही चतुर्दिक में निकुञ्ज पुञ्ज सुशोभित हैं, एवं उस कुञ्ज-कुञ्ज में भ्रमर निचय के मधुर गुञ्जन उल्लसित है ॥७२॥

यद्ब्रह्मकुण्डं शिवकोणतुण्डं,
समन्तत स्तस्य च कुञ्ज पुञ्जाः ।
यदुत्तरे सा सदशोकवाटी,
धाटीव या तद्द्वय-धैर्य्यलुण्ठे ॥७३॥
गोपीश ईशः स तदीशकोणे,
गोपीजनानां वरदोऽर्च्चनीयः ।
श्रीकृष्ण सङ्गाय यथा स दूती,
जनो विनोदेन मनो धिनोति ॥७४॥

शिवकोणस्य ईशान कोणस्य तुण्ड तुण्डाकारं यद् ब्रह्मकुण्डं तस्य च समन्ततः कुञ्जपुञ्जाः सन्ति । यस्य ब्रह्मकुण्डस्योत्तरे सा शोभनाशोकवाटी या अशोकवाटी तद् द्वयस्य राधाकृष्णस्य धैर्य्यलुण्ठे धैर्य्यस्य लुण्ठने धाटीव धाटी मार्गालुण्ठकः बलादाक्रमणं घाटी ॥७३॥

गोपीशनामा स ईशो महादेव तस्याः वाट्यया ईशान कोणेऽस्ति । श्रीकृष्ण सङ्गार्थं दूतीजनो यथा गोपीजनानां विनोदेन मनो धिनोति सुखयति च तथा स गोपीश वरदोऽर्च्चनीयश्च सन् गोपीजनानां मनो धिनोति ॥७४॥

गोविन्द कुण्ड के ईशान कोण के सम्मुख में ही जो 'ब्रह्मकुण्ड' अवस्थित है, उसके चारों ओर ही कुञ्ज समूह सुशोभित हैं, एवं उस ब्रह्मकुण्ड के उत्तर जो मनोहर अशोक वाटिका है, वह श्रीराधा-कृष्ण युगल के धैर्य्य हरण के लिए घाटी के समान हैं, अर्थात् बल पूर्वक हठात् आक्रमणकारी मार्ग लुण्ठक के समान है ॥७३॥

श्रीकृष्ण सङ्ग के लिए दूतीजन जिस प्रकार गोपाङ्गनागण की लीला विहार द्वारा चित्त विनोदन करते हैं, उस प्रकार वाटिका के ईशान कोण में जो 'गोपीश्वर' नामक शिव है, आप गोपीगण के अर्च्चनीय एवं वरद होकर उन सबके चित्त में शान्ति विधान करते हैं ॥७४॥

तस्येश कोणे तददूर एव तटे तटिन्या नटतीव भाति ।
वंशीवटो यस्य तले सवंशीं वंशीधरो वादयते प्रियाभ्यः ॥७५

यदुत्तरे नैधुवनं वनं तत्,
तन्नाम गीतं श्रुतिचित्तनीतं ।
सोऽन्तर्हितो यत्र परां प्रियां प्राग्,
रासोन्मुखीभ्यो रमयन् प्रियाभ्यः ॥७६॥

तस्य गोपीशस्य ईशान कोणे तस्य गोपीशस्य अदूरे तटिन्या यमुनायास्तटे वंशीवटो नटतीव भाति । यस्य वटस्य तले प्रियाभ्यः प्रिया गोपीराक्रष्टुं वंशी वादयते ॥७५॥

यस्य योगपीठस्योत्तरे नैधुवनं नाम तद्वनं । तन्नाम्ना निधुवन नाम्ना गीतं कथितं सत् श्रीराधया सह निधुवन श्रुतिचित्त नीतं श्रुतौ कर्णे चित्ते च नीतं प्रापितं । यत् यत्र निधुवने परां प्रियां श्रीराधां रमयन् रासोन्मुखीभ्यः प्रियाभ्यः सकाशात् अर्थात् रासारम्भस्य प्राक् सः श्रीकृष्णोऽन्तर्हितः । अतिशयेन निधुवनं रमणं विद्यते यत्र तन्नैधुवनं रतं निधुवनञ्च तदित्यमरः ॥७६॥

उस गोपीश्वर के ईशान कोण के अदूर में श्रीयमुना तट पर प्रसिद्ध 'वंशीवट' एक नट के समान शोभित है, इस वंशीवट के तलदेश में ही वंशीधर श्रीकृष्ण प्रियतमा व्रजसुन्दरी को आकर्षण करने के लिए वंशी ध्वनि करते हैं ॥७५॥

उस वंशीवट नामक योगपीठ के उत्तर में निधुवन अर्थात् विहार कानन है, वह ही 'निधुवन' नाम से कथित है। वहाँ पर श्रीराधा के साथ जो निधुवन अर्थात् लीला रमण है, वह प्रेमिक भक्त का एकमात्र गेय, श्रवणीय एवं चिन्तनीय है, उस निधुवन में ही परम प्रियतमा श्रीराधा को लेकर रमण करने के उद्देश्य से रासविहारी श्रीकृष्ण रासोन्मुखी व्रज-ललनागण के निकट से रास आरम्भ के पूर्व ही अन्तर्हित हो गये थे ॥७६॥

सूर्य्यास्पदे नैऋत कोण कन्दे,
कुन्दोत्थवत् कञ्ज निकुञ्ज पुञ्जे ।
श्रीराधिका सूर्य्य समर्च्चनार्थे,
नवा जवा राजति राग फुल्ला ॥७७॥
वायव्य कोणे च कदम्बमूले,
या भद्रकाल्यस्ति तदर्च्चनायां ।
स गोपकन्यादिकचीरचित्तं,
चौरी चकारास्ति च चीरचोरः ॥७८॥

श्रीराधिकया कर्त्र्या सूर्य्यस्य सम्यक् पूजनार्थं यत्र सूर्यास्पदे फुल्ला नवा जवा पुष्पं राजति । रागफुल्ला इति पाठे रागेन अनुरागेन रक्त रागेन च कीदृशे सूर्यास्पदे ? नैऋत कोणस्यकन्दे सुखदे कुन्दोत्थ निकुञ्ज पुञ्जवत् कञ्जस्य पद्मस्य निकुञ्ज पुञ्जं यत्न तत्र तथाच कुन्दकञ्ज पद्मकुञ्जवति ॥७७॥

या भद्रकाली अस्ति तस्याः भद्रकाल्याः अर्च्चनायां सः श्रीकृष्ण गोप कन्यानामादि शब्देन व्रत पूर्वदिने निमन्त्र्य आनीतानां

उसके नैऋत कोण में कुन्द कुसुम कुञ्ज के समान कमल कुञ्ज पुञ्ज के मध्ये सुखद सूर्य्यास्पद अर्थात् सूर्य्य मूर्त्ति प्रतिष्ठित है, उस सूर्य्यापद में श्रीराधा ठाकुराणी सूर्य्य पूजा करने के कारण अनुरागोत्फुल्ल अथवा रक्तराग से प्रफुल्ल नवीन जवा कुसुम शोभित हैं ॥७७॥

उसके वायुकोणस्थ कदम्ब तरु मूल में जो भद्रकाली है, उन भद्रकाली की अर्च्चना के समय श्रीकृष्ण व्रत पूर्वदिन में श्रीराधिकादि गोप-बधुगण को (निमन्त्रणकर) लाकर उन सबके वसन एवं मन

कोणेऽनलस्यास्ति स विघ्नराजो,

य मर्च्चयन्ति प्रयताः प्रियं ताः ।

प्रियप्रसङ्गेऽनिशविघ्नशङ्काः,

शङ्का लभन्तेऽत्र विनोद्यमेन ॥७६॥

श्रीराधिकादि गोपवधूनाञ्च चीरं च चित्तं च चौरी चकार। यत्र चीरचोरश्चास्ति ॥७८॥

अनलस्य कोणे अग्निकोणे सः श्रीकृष्ण एव विघ्नराजः सन्नस्ति स प्रसिद्धो वा। यं विघ्नराजं ताः गोप्यः प्रयताः अर्च्चयन्ति। अत्र पूजायां उद्यमेन विना प्रेयसः प्रियस्य प्रकृष्ट सङ्गेऽनिशं निरन्तरं विघ्नशङ्कान् लभन्ते। शङ्केति पूजायामुद्यमेन विना का वा गोपीशं सुखं लभन्ते न कापीत्यर्थः ॥७६॥

अपहरण किये थे। इस स्थान में उस वसन-चोर नित्य अवस्थान करते हैं ॥७८॥

उसके अग्निकोण में श्रीकृष्ण तादृश विघ्नराज स्वरूप में अवस्थान करने पर भी गोपीगण उस विघ्नराज की ही प्रियतम स्वरूप में अतीव यत्न के साथ अर्च्चना करती हैं। इस अर्च्चना में विघ्न का कोई कारण न होने पर भी प्रिय प्रसङ्ग में निरन्तर ही विघ्नाशङ्का वे करती रहती हैं। शङ्का यह है कि तादृश पूजा का उद्यम को छोड़कर कौन व्यक्ति गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण के सङ्ग सुख लाभ कर सकते हैं ॥७६॥

प्राच्यां दिशि प्रेममय प्रपूर्ण,
श्रीवेणुकूपं विलसत्यलं यत् ।
श्रीवेणुवाद्यैः स्वयमाविरासीत्,
श्रीवेणुपाणेः परमप्रियायै ॥८०॥
रासोन्मुखे त्यक्तसमस्तकान्तः,
कान्तस्तदा वादयदाशु वेणु ं ।
रहो विलासेन तया यदाभूत्,
तस्याः पिपासार्त्ति पिपासयार्त्तः ॥८१॥

विघ्न राजस्य पूर्वदिशि प्रेममय पयसा जलेन प्रपूर्वं श्रीवेणुकूप मलं विलसन्ति । परमप्रिया श्रीराधा तस्याः अर्थेवेणुपाणेः श्रीकृष्णस्य वेणुवाद्यैः करणैः यत् वेणु कूपं स्वयमाविबभूव ॥८०॥

वेणु कूपाविर्भावे कारण माह । रासोत्सवस्योन्मुखे त्यक्ताः समस्ताः कान्ताः येन तथा भूतः कान्तः आशु वेणु ं तदा अवाद्यन् कदा तत्राह । तया राधिकया सह रहो विलासेन तस्याः राधायाः

उस विघ्नराज के पूर्वदिक् में प्रेममय सलिल परि-पूरित 'श्रीवेणुकूप' नामक एक कूप अतिशय शोभित है। वेणुपाणि श्रीकृष्ण परम प्रियतमा श्रीराधा का अभिसार के उद्देश्य से किसी समय मोहन वेणु-वाद्य किये थे। उससे ही यह सुन्दर प्रेम रूप 'वेणु कूप' आविर्भूत हुआ था ॥८०॥

अनन्तर उस वेणु कूप का आविर्भाव का कारण कथित हो रहा है। रासोत्सव के प्रारम्भ में रास रसिक श्रीकृष्ण प्रियतमा श्रीराधा के साथ निभृत लीला विलास करने के लिए समस्त कान्ता-गण को परित्याग कर श्रीराधा को लेकर अन्तर्हित हो गये थे। निभृत लीला विलास से श्रीराधा परिश्रान्ता होकर पिपासार्त्ता होने पर

शृङ्गार शान्तौ यदधो निकुञ्जे शृङ्गारयामास परां प्रिया स:।
शृङ्गार नामा स वटोऽधुनापि सङ्गीयते तत्तदिवेक्षते च ।।८२

पिपासया या आर्त्ति पीड़ा तस्या: पिपासया नाशेच्छया स: श्रीकृष्ण: यदा आर्त्तोऽभूत् ।।८१।।

शृङ्गारस्य शान्तावववशाने सति यस्य वटस्याधो निकुञ्जे स: श्रीकृष्ण: परां प्रियां श्रीराधां शृङ्गारयामास भूषयाञ्चकार। सवटोऽधुनापि शृङ्गारवट नामा सम्यक् जनै गीयते यत्र तत् वटोऽध: कुञ्जं तदिव रहस्य लीला सहित शृङ्गारादि कर्त्तुं योग्यं निकुञ्ज-मिवाधुनापि च ईक्षते। ग्रन्थ निम्र्माण समये शृङ्गारवटतलेऽतीव निभृत कुञ्जमासीदिति श्रुतं ।।८२।।

श्रीकृष्ण उनकी पिपासार्त्ति निवारण की अभिलाष से वेणुवादन करने से उक्त वेणु कूप का आविर्भाव हुआ था ।।८१।।

विहारावसान में जिस वट तरु के तलदेशस्थित निकुञ्ज में श्रीकृष्ण परम प्रियतमा श्रीराधा को विविध वेशभूषा से पूर्ववत् विभूषिता किये थे, उस वटवृक्ष ही अधुना "शृङ्गार वट" नाम से अभिहित है। इस वटवृक्ष के तलदेश में अभी भी रहस्य लीला के साथ शृङ्गारादिके उपयोगी एक निकुञ्ज परिदृष्ट होता है, कथित है कि जिस समय श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय ने इस ग्रन्थ की रचना की, उस समय शृङ्गार वट तल में अतीव निभृत एक निकुञ्ज विद्यमान था ।।८२।।

यदा स वंशीवटगः स्ववंशीं वंशीधरोऽवादयदाशु तर्हि ।
धीरः समीरोऽपि बभूवयत्र स्थलञ्च तद्धीरसमीर नाम ॥८३॥
समन्ततो यद्यपि भाति कृष्ण कृष्णानुरागा पुलिनानि तस्याः ।
तथैव सर्वत्र तथापि वंशी वटोन्तिमान्येव नटन्ति मन्ये ॥८४॥

स वंशीधरो वंशीवटगः सन् यदा स्व वंशीमवादयत् तर्हि समीरो वायुरप्याशु धीरो बभूव । यत्रस्थले वायु धीरो बभूव तत् स्थलमपि धीरसमीर नाम बभूव ॥८३॥

कृष्णा यमुना तस्याः पुलिनानि च यद्यपि श्रीवृन्दावनस्य समन्ततो भान्ति तथापि सर्वत्र तथैव वंशी तटस्या अन्तिमानि निकट वर्त्तितया स्थितान्येव उल्लासेन नटन्तीत्यहं मन्ये । यमुना पुलिनयोः वंशीवटसमीपे शोभातिशयमिति भावः ॥८४॥

वंशीधर श्रीकृष्ण उस वंशीवट के समीप में गमन कर जिस समय वंशी ध्वनि किये थे । इस समय समीरण भी आशुधीर अर्थात् स्तम्भित हुए थे, इस रूप से जिस स्थान पर वायुधीर हुए थे, उक्त स्थान ही 'धीर समीर' नाम से अभिहित है ॥८३॥

श्रीयमुना और उनके कृष्णानुरागमय पुलिन समूह यद्यपि श्रीवृन्दावन के चतुर्दिक में शोभित हैं, एवं यद्यपि सर्वत्र ही वह एक ही रूप शोभा है, तथापि वंशीवट की समीपवर्त्तिनी शोभा जैसे उल्लासातिशय्य से नृत्य कर रही है । फलत. श्रीयमुना और उसके पुलिनों की शोभा वंशीवट के समीप में ही जैसे सर्वोत्कर्ष प्राप्त हुई है ॥८४॥

सर्वत्र कुञ्जजोत्तममन्दिरेषु,
वृन्दादयः प्रत्यहमेवसारं ।
शय्यादिकं या रचयन्ति चित्रं,
चित्रं स कृष्णोऽपि यदीक्षणे स्यात् ॥८५॥
तत्रैव सर्वाः प्रति रासरादौ ताम्बूलसर्वाद्ययथातथञ्च ।
तत् सर्वमालोक्यरसेन चित्रं चित्तं द्रुतं ताश्च तथा द्रुताश्च॥८६

या वृन्दादयः कुञ्जोत्तम मन्दिरेषु सायंकाले चित्रं शय्यासनकादिकं रचयन्ति । येषां शय्यादीनामीक्षणे स कृष्णोऽपि चित्रं स्यात् वृन्दादि कर्त्तृकप्रत्यहमेव शय्यादिरचना प्रकारमपूर्वं दृष्ट्वा श्रीकृष्णोऽपि प्रत्यहमेवाश्चर्य्यंमन्यते ॥८५॥

प्रतिवासरादौ प्रातःकाले सर्ववृन्दादयः तत्तैव स्वनिर्म्मित शय्यादिष्वेत्र ताम्बूल-चर्य्यादि मालोक्य तथा तत् सर्वं शय्यादिक मयथातथं व्यक्त समस्तञ्चालोक्य तथा तत् सर्वं रसेन यावकादि रसेन चित्रञ्चालोक्यं तासां चित्त द्रुतं भवति ताश्च वृन्दादयो द्रुताः प्रेमानन्दादिभिरार्द्रा भवन्तीति ॥८६॥

श्रीवृन्दावन के सर्वत्र जो सब उत्तम निकुञ्ज मन्दिर हैं, श्रीवृन्दादि सखीवृन्द प्रत्यह उन सब मन्दिर के मध्य में सायंकाल में अपूर्व शय्यादि की रचना करती हैं। वह सब शय्या आसनादि की रचना नित्य नूतनविध एवं अपूर्व मनोहर है, ये सब देखकर श्रीकृष्ण भी नित्य विस्मय मुग्ध होते हैं ॥८५॥

प्रत्यह प्रातःकाल में वृन्दादि सखीगण उन सब स्वहस्त निर्म्मित शय्यादि में ताम्बूल चर्वणादि, शय्यादि का विन्यास विपर्य्यय एवं अलक्त रस से चित्रणादि श्रीराधाश्यामसुन्दर की लीला विहार के चिह्न सकल को अवलोकन कर प्रेमानन्द रस से चित्त द्रवीभूत होने से वे सब भी द्रुता अर्थात् आर्द्रीभूता हो जाती हैं ॥८६॥

श्रीनन्दीश्वर मन्दिरान्तमभितोवृन्दावनेन्दोः पदं,
श्रीवृन्दावनमेव काननवनं तत्रोल्लसद्रोचिषा ।
श्रीवृन्दावन देशलेश मनने श्रीरीति चिन्तामणौ,
तल्लीलारसलोभशोभनोदयः सर्गो द्वितीयोदयः ॥८७॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥

नन्दीश्वर मन्दिरान्तं तथा तस्य मन्दिरस्य अभित श्चतुर्दिक्षु श्रीकृष्णस्य पदं विहारस्थानं तत्र तेषु स्थानेषु मध्ये उल्लसद्रोचिषां श्रीवृन्दावनमेव काननेषु वनं काननोत्तमं तस्य वृन्दावन देशस्य यो लेश स्तस्यमननं यस्मात्तस्मिन् श्रीरीतिचिन्तामणौ द्वितीयोदयः सर्गः । सर्गः कीदृशः ? तयोः राधाकृष्णयोः लीलारसस्य लोभे लोभोत्पादने शोभनोदयो यस्य सः ॥८७॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥

श्रीनन्दीश्वर मन्दिर प्रान्त में एवं उसकी चारों ओर श्रीवृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण के जो सब विहार स्थान हैं, तन्मध्ये उल्लसित शोभामाधुर्य्य में श्रीवृन्दावन ही कानन समूह के मध्य में काननोत्तम है । उस वृन्दावन प्रदेश के लेशमात्र मनन भी जिससे सिद्ध होता है, उस "श्रीरीति-चिन्तामणि" नामक ग्रन्थ में श्रीराधा कृष्णरस के प्रति लोभोत्पादन में शोभनोदय स्वरूप यह द्वितीय सर्ग विवृत हुआ ॥८७॥

॥ इति द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥

* * *

❀ तृतीयः सर्गः ❀

वृन्दावनेष्वीदृश-वैभवेषु माधुर्य्य धूर्य्य ध्वजवद्धिनोति ।
गोवर्द्धनोनाम धराजिराजो राजोपचारैं युवराजराजं ॥१॥
नानाविधा रत्न वरेण्य-वाराः शिला यदीया विलसन्ति यत्र ।
कृष्णस्य सिंहासन पीठ खट्वा शय्यादि रूपा रसराज्य भूपाः॥२

गोवर्द्धनो नाम पर्वतः युवराजराजं श्रीकृष्णं राजोपचारैः रत्नासनारिभि र्धिनोति प्रीणयति । कीदृशः ? ईदृश वैभवेषु वृन्दावनेषु माधुर्य्यमयध्वजावत् ॥१॥

यत्र गोवर्द्धने नानाविधाः शिलाविलसन्ति । कीदृशाः ? रत्न वरेण्यानां वारा समूह रूपाः समूहो यत्र इति वा "निवहावसरे वार इत्यमरः" । कृष्णस्य सिंहासनादि रूपाः । रसरूप राज्यस्य भूपाः श्रीकृष्णस्तत् परिकरेभ्यो नानाविध रस दातारः यासु सख्यादि सर्वेरसा भवन्तीत्यर्थः ॥२॥

ईदृश वैभव विशिष्ट श्रीवृन्दावन में महामाधुर्य्य के ध्वजस्वरूप "श्रीगोवर्द्धन" नामक गिरिराज रत्नासनादि राजोपचार द्वारा व्रज युवराज श्रेष्ठ श्रीकृष्ण की प्रीति विधान करते हैं ॥१॥

इस श्रीगोवर्द्धन में जो नानाविध महामूल्य रत्न शिला है, वे सब शिला श्रीकृष्ण के सिंहासन पीठ (उपवेशन का आसन) पालङ्क व शय्यादिरूप में एवं सख्यादि रस रूप राज्य की राज्ञी स्वरूप में शोभित हैं। अर्थात् उन रत्नशिला समूह श्रीकृष्ण एवं उनके परिकरगण को नानाविध रस प्रदान करते हैं, अथवा उन सब शिला में सख्यादि समस्त रस की लीला विलास ही निष्पन्न होता है ॥२॥

यत् कन्दराः कुञ्जवरेण्य पुञ्जाः
श्रीकृष्ण केली रस मन्दिराणि ।
पृथक् पृथक् तत् परमप्रियादेः
सौभाग्य भाग्योत्तम योग्यतानि ॥३॥

पराग पुष्पै र्मधुभि र्मरन्दैः प्रवाल वारै र्मधुरैः फलैश्च ।
नानाविधै यत्तरवो लताभिः कृष्णस्य सेवां रचयन्ति ताभिः ॥४

यत् कन्दराः कीदृशाः कुञ्जवरेण्यानां पुञ्जा यत्र तादृशाः तथा श्रीकृष्ण केलि मन्दिराणि । कीदृशानि ! पृथगित्यादि तस्य श्रीकृष्णस्य परम प्रियादेः पृथक् पृथक् सोभाग्य भाग्योतमस्य सूचिका योग्यता येषु तानि । तथा च यस्या यादृश सौभाग्य भाग्यं तस्या स्तादृशं मन्दिर मेव तस्याः सौभाग्य भाग्योत्तमं सूचयति । आदि पदेन सखी किङ्करी सखादीनाञ्च ॥३॥

यत्तरवः यस्य गोवर्द्धनस्य वृक्षाः लताभिः सहिताः । नानाविधैः पराग पुष्पादिभि स्ताभिः पूर्व पूर्व श्लोकोक्तशिलादिभिश्च परागः पुष्परजः मरन्दः पुष्परसः प्रवालो नव पल्लव स्तस्य वारैः समूहैः कृष्णस्य सेवां रचयन्ति ॥४॥

वहाँ पर जो सब गिरि कन्दर, कुञ्जोत्तम पुञ्ज व श्रीकृष्ण क्रीड़ा विलास भवन हैं, वे सब ही श्रीकृष्ण की परम प्रेयसी, सखी, किङ्करी व सखा प्रभृति के पृथक-पृथक् सौभाग्य भाग्योत्तम सूचक है, अर्थात् जिनके जैसा सौभाग्य है, उनके उस प्रकार ही उपयुक्त मन्दिर है ।।३॥

इस गोवर्द्धन के वृक्ष-वल्लरी-समूह नानाविध पुष्प, पराग, मधु पुष्परस, नव पल्लव व सुमधुर फलनिचय द्वारा एवं पूर्व-पूर्व श्लोकोक्त शिलादि द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा अर्थात् परिचर्य्या विधान करते हैं ।।४॥

यद्धातवो गैरिक हिङ्गुलाद्या मनः शिलाख्या हरितालमुख्याः।
अतिप्रियाःश्याम शरीरशोभा लोभाय कुर्वन्ति विधु प्रियाणां॥५
कस्तूरिका स्तद्धरिणै र्निसृष्टा जाता स्वयं कुङ्कुमसार जाताः।
कर्पूर पूराश्च सुगन्धयन्ति कृष्णाय कृष्णा गुरुभिश्च यत्र ॥६॥
यत्रास्ति सा चन्दनसारजाति र्न तत्र सर्पः स च चेद्विषं न।
विषञ्च चेत् क्वापि न दुःखदं तद्धरेः सुखैकं हरिदास वर्य्ये ॥७॥

गैरिक हिङ्गुलाद्या अतिप्रियाः यस्य धातवः विधोः श्रीकृष्णस्य प्रियाणां लोभाय श्याम शरीरस्य श्रीकृष्ण शरीरस्य शोभाः कुर्वन्ति॥५॥

यत्र तद्धारिणैः गोवर्द्धनीय हरिणै र्निसृष्टा त्यक्ताः कस्तूरिका तथा स्वयं जाता कुङ्कुम सारस्य जाताः समूहाः। कर्पूर पूराश्च स्वयं जाताः कृष्णागुरुभिः सह श्रीकृष्णाय श्रीकृष्णार्थं सुगन्धियन्ति॥६॥

यत्र हरिदासवर्य्ये गोवर्द्धने सा चन्दनजातिरस्ति। तत्र चन्दनजातौ सर्पो न। चेद् यदि स सर्प स्तत्र वर्त्तते तदा तस्य सर्पस्य

उस गिरि-सम्भूत गैरिक, हिङ्गुल, मनःशिला व हरितालादि श्रीकृष्ण के अति प्रिय धातु सकल भी श्रीकृष्णचन्द्र की प्रियतमागण की लालसा उद्दीपन के निमित्त श्यामसुन्दर के अङ्ग शोभा विधान करते हैं ॥५॥

वहाँ पर हरिण यूथ द्वारा परित्यक्त कस्तूरिका, स्वयं जात कुङ्कुमसार समूह व कर्पूर प्रवाह कृष्णागुरु के साथ सम्मिलित होकर श्रीकृष्ण की प्रीति सम्पादनार्थ मनोहर सौरभ विकीर्ण कर रहे हैं ॥६॥

उस हरिदासवर्य्य में अर्थात् श्रीगोवर्द्धन में चन्दन तरुराजि रहने पर भी उसमें सर्प नहीं है, यदि किसी स्थान पर साँप रहे तो

व्यावर्त्तने वाम्यवशान्मृगाक्ष्याः सर्पादि वीक्षादिभिरेवसद्यः ।
स्वयं समाश्लेष-विशेष-लाभो हरे रसोऽसो हरिदास-वर्य्ये ॥८॥

विषं न । चेद् यदि क्वापि सर्पे तद्विषं दुःखदं न प्रत्युत तद्विषं हरेः सुखैकं हरेः सुखमेव एकं मुख्यं केवल वा यत स्तथाभूतं ॥७॥

हरिदासवर्य्ये तु सर्पविषमपि कृष्णसुखदमुक्तं तदेवाह । मृगाक्ष्याः वाम्य वशाद्व्यावर्त्तने कृष्णंविहाय विवृत्यान्यत्र गमने सर्पादि वीक्षादिभिरेव स्वयमागत्य सा भयात् श्रीकृष्णमालिङ्ग्य तिष्ठतीत्याकारक हरे रसौ सम्यक् आश्लेष लाभरूपो रसो भवेदिति शेषः । कस्या अपि प्रेयस्याः सर्वथैव यदि मान भङ्गो न भवति तदा सर्पेणाहं दष्टः इति श्रीकृष्णवाक्यश्रवणमात्रेण मानं त्यक्त्वा सैव श्रीकृष्णस्य शुश्रूषायां व्यग्रा भवत्येव सुन्दरमिति ॥८॥

भी वह दुःखप्रद नहीं होता है, वस्तुत वह श्रीकृष्ण के केवल सुख कारण ही है ॥७॥

हरिदासवर्य्य उस गोवर्द्धन प्रदेश में सर्प-विष भी किस प्रकार कृष्ण सुखकर होगा, वह इस श्लोक में वर्णित है, मृगलोचना श्रीराधा वाम्यभाव प्रकाश पूर्वक श्रीकृष्ण को परित्याग कर अन्यत्र गमन करते समय यदि दैवात् सर्पादि का दर्शन करती है, तब वह तत् क्षणात् भीत होकर स्वयं आकर श्रीकृष्ण को आलिङ्गन करके रहती है, इस प्रकार से ही श्रीकृष्ण का इस सम्यक् आलिङ्गन रूप विशेष लाभ से एक परमानन्द रस स्फुरित होता है। अथवा यदि किसी प्रेयसी का मान भङ्ग नहीं होता तब "सर्प ने मुझको डँस लिया है" कहकर श्रीकृष्ण चीत्कार करने से प्रेयसी को छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्ण की शुश्रूषा के लिए व्यस्त हो जाती है, यह भी श्रीकृष्ण के लिए सुखद है ॥८॥

क्वचिच्चिला-नीलमणि प्रवीणाः
कुत्रापि ता मारकतैक तानाः ।
ताः पद्मरागाः स्फटिकाश्च काश्चिद्,
गोवर्द्धनाद्रौ विधु-केलि-कल्पाः ॥९॥

जाम्बुनदग्राववरान्निरीक्ष्य कृष्णाग्रजोऽरं वृषभानुजाधीः ।
दूरं प्रयाति स्फटिकोच्चयान्तात् कृष्णाग्रजोऽत्रेत्यपिसापियत्र॥१०

तास्ताः शिलाः क्वापिस्थाने नीलमणि प्रवीणा नीलमणेः प्राविण्यमौत्कर्षमण्या अपि तत्र शिलाः सन्ति। मरकतमणेरेवैका वृत्तिर्यत्र तथाभूता स्तन्मयेत्यर्थः। ताः शिलाः विधोः श्रीकृष्णस्य केलौ कल्पाः समर्थाः ॥९॥

कृष्णाग्रजः श्रीवलदेवः, जाम्बूनदग्राव वरान् स्वर्ण वर्ण पाषाण वरान् समूह मध्ये वीक्ष्यात्र श्रीवृषभानुजा वर्त्तत इति धी र्यस्य सः अरं शीघ्रं दूरं प्रयाति। यत्र सा श्रीराधिकापि स्फटिक शिला वरान्

उस गोवर्द्धन पर्वत में शिला सकल नीलमणि की अपेक्षा भी उत्कृष्टतर होकर भी सामान्य शिला रूप में प्रतीत होते हैं। कहीं पर मरकत-मणि के साथ समान वृत्ति में अवस्थित है, अर्थात् वे शिला सकल मरकत-मणिमय हैं, कहीं पर पद्मराग-मणिमय है, एवं कहीं पर स्फटिकमय है, इस प्रकार वह शिला समूह श्रीकृष्ण की केलि विलास के सम्पूर्ण उपयोगी हैं ॥९॥

कृष्णाग्रज श्रीबलदेव वहाँ पर स्वर्ण वर्ण पाषाणराजि को दर्शन कर "इस स्थान पर श्रीभानुनन्दिनी अवस्थान करती हैं" इस प्रकार मानकर वहाँ से शीघ्र दूर को चले जाते हैं, और श्रीराधिका भी वहाँ पर स्फटिक शिलाराजि के दर्शन से 'यहाँ पर कृष्णाग्रज बलदेव अवस्थान कर रहे हैं" इस प्रकार मानकर उस स्फटिक समूह

कृष्णस्तु जाम्बुनदमध्यमेति,
मुहुः स्व कान्ता द्युतिविद्धबुद्धिः ।
कान्तादि तस्येन्द्रमणी शिलान्तं,
कान्त भ्रमाच्छ्री हरिदास-वर्य्ये ॥११॥

वीक्ष्य श्रीकृष्णाग्रजो वलदेवोऽत्रास्तीति धी र्यस्या सा स्फटिकोच्चयनात् स्फटिकसमूहनिकटात् दूरं प्रयाति ॥१०॥

जाम्बुनदग्रावान् वीक्ष्य स्वकान्ता या द्युतौ विद्या बुद्धि र्यस्य स श्रीकृष्णस्तु जाम्बुनदशिलमध्यं गच्छति । तस्य कान्तापि मणि शिलान्तं शिलामध्यं तत्र तत्र कान्तस्य भ्रमात् मुहुरिति ॥११॥

के निकट से दूर हो जाती है । परस्पर के वर्ण साम्य हेतु ही उनके इस प्रकार विभ्रम उपस्थित होता है ॥१०॥

उस गोवर्द्धन पर्वत में सुवर्ण-शिला-समूह सन्दर्शन पूर्वक श्रीकृष्ण स्वीय कान्ता श्रीराधा के रूप ज्योति भ्रम से इस स्थान में श्रीराधा अवस्थान कर रही हैं, यह मानकर उस सुवर्ण शिलाराशि के मध्ये बारम्वार गमन करते हैं, और श्रीराधा भी इन्द्रनील-मणि समूह को दर्शन कर स्वीय कान्त श्रीकृष्ण भ्रम से वहाँ पर बारम्वार गमन करती हैं ॥११॥

यस्याङ्गशोभा न विलोभयन्ति,
कम्बानिकुञ्जेषु दरीषु दृष्टाः ।
कृष्णस्यकान्ता निवहस्य हारा-
दिभिः पदालक्तकचर्विताद्यैः ॥१२॥
यस्येन्द्र नीली मणिरेव कृष्णो जाम्बुनदान्येव तदीय कान्ताः ।
तत् केलयो यस्य कुटुम्बभावा गोवर्द्धनन्तं कवयन्तु के वा ॥१३

कुञ्जेषु दरीषु च श्रीकृष्णस्य तत् कान्ता समूहस्य च हारादिभिस्तथालक्तक ताम्बूलचर्वितादिभि र्यस्य गोवर्द्धनस्याङ्गशोभा दृष्टाः शोभास्ताः शोभाः कं वा जनं न विलोभयन्त्यपि तु सर्वमपि॥१२॥

यस्य गोवर्द्धनस्य इन्द्रनीलमणिमय भूषणादि रूपः श्रीकृष्णः स्वर्णमय्यानि भूषणानि-स्वरूपाणि गोप्यः। तत् केलयस्तेषां श्रीकृष्ण तदीय कान्तानां केलयः कुटुम्बेषु कन्यापुत्रादिष्विव भावः भावयुक्ताः पुत्रादिवत् सदैव तत्र वर्त्तमानास्तं गोवर्द्धनं के वा जनाः कवयन्तु वर्णयन्तु ॥१३॥

निकुञ्ज मन्दिर में एवं गिरि कन्दर में श्रीकृष्ण के एवं कृष्ण कान्तागण के हारादि भूषण, श्रीचरण के अलक्तक राग व ताम्बूल चर्व्वितादि द्वारा उस गोवर्द्धन पर्वत के अङ्ग शोभा परिदृष्ट होती है। उस शोभा समूह किसके विशेष लोभोत्पादन नहीं करती हैं ? अर्थात् समस्तजनों के लोभोत्पादन करती रहती हैं ॥१२॥

श्रीकृष्ण ही जिनके इन्द्र-नीलमणि भूषण हैं, एवं श्रीकृष्ण कान्ता गोपीगण ही जिनके स्वर्णमय भूषणादि स्वरूप हैं, एवं श्रीकृष्ण व तदीय कान्तागण की केलि निचय ही जिनके कन्या पुत्रादि के समान भावयुक्त हैं, अर्थात् कन्या पुत्रादि के समान सर्वदा वहाँ पर वर्त्तमान हैं, उस गोवर्द्धन की महिमा कौन वर्णन कर सकते हैं ? अर्थात् कोई भी व्यक्ति वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं ॥१३॥

स ताण्डवं ताण्डविनश्चरन्ति,
गायन्ति भृङ्गाश्च पिकाश्च वीक्ष्य ।
तन्वन्ति तालं बहु पक्षिणोऽन्ये,
हरेस्तु सेवा हरिदास वर्य्ये ।।१४।।

पर्य्यन्त भूमि परितो यदीयां कृष्णस्य खेलावलि-लालितानि ।
कुण्डानि कुञ्जानि पदानि भान्ति सन्निर्झरास्तेपरितः स्त्रवन्ति।।१५

हरिदास वर्य्ये हरेः सेवां वीक्ष्य । सेवा आह । श्रीद्भागवते । "हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्य इत्यनन्तरं मानं तनोति, सह गो गणयोस्तयोर्यत् पानीय सुयवसकन्दर-कन्दमूलै रित्यत्र जलादिना गोवर्द्धनकृत श्रीकृष्णसेवां दृष्ट्वा ताण्डविनो मयूराः स ताण्डवं यथा स्तात्तथा चरन्ति गच्छन्ति ताण्डवं वीक्ष्य भृङ्गाः पिकाश्च गायन्ति । गानं श्रुत्वा अन्ये बहु पक्षिण स्तालं तन्वन्ति ॥१४॥

गोवर्द्धनस्य परितः चतुर्दिक्षु यदीयां गोवर्द्धनीयां पर्य्यन्त भूमि, परिसर भूमौ । पर्य्यन्त भू परिसर इत्यमरः । खेलावलिभि र्लीलास्थानानि कुण्डानि कुञ्जानि तथा पदानि स्थानानि भान्ति ते सन्निर्झराश्चपरितः स्त्रवन्ति ॥१५॥

श्रीगोवर्द्धन में सुरस पानीय कन्दर, सुस्वादु कन्दमूलादि द्वारा गोवत्सगण के साथ श्रीकृष्ण सेवा दर्शन कर, मयूर समूह नट की भाँति सुन्दर नृत्य करते रहते हैं, उस नृत्य का देखकर भृङ्ग व कोकिल-कुल सुस्वर से गान करते रहते हैं, एवं उस गान को सुनकर अपर पक्षिकुल उसमें ताल, तान की योजना करते रहते हैं ॥१४॥

उस श्रीगोवर्द्धन शैल के चतुर्दिक में जो परिसर भूभाग है, उसमें श्रीकृष्ण की क्रीड़ा समूह द्वारा परिपुष्ट कुण्ड, कुञ्ज व लीला स्थान समूह शोभित हैं, एवं सुन्दर निर्झर सकल चारोंदिग् में संस्रस्त हो रहे हैं ॥१५॥

तत् पूर्वतोदाननिवर्त्तनाख्यं कुण्डं यदीय स्मरणेन सद्यः ।
श्रीराधिकातद्दयितोप्युदञ्चद्रोमाञ्चकम्पाञ्चितसुन्दरःस्यात्॥१६
ततोऽपिपूर्वेपररासलीला-बलीस्थली साति बलीयसी या ।
स्मृतापि तां तं नटयत्यकाण्डे स्वीये रसे चन्द्रसरोवरञ्च ॥१७

तत् पूर्वतः गोवर्द्धनस्य पूर्वदिशि दानलीलायाः वर्त्तनं परि समाप्तिर्यत्र तदाख्यं कुण्डमस्तीति शेषः। यदीय लीलास्मरणेन श्रीराधिका श्रीकृष्णोऽपि उद्गतरोमाञ्च कम्पै रञ्चितेन पूजितेन व्याप्तो वा हेतुना सुन्दरः शोभातिशयवान् स्यात् ॥१६॥

तत स्तस्माद् दान निवर्त्तनाख्य कुण्डात् पूर्वे परासुलीति ख्याता परा उत्तमा रासलीला या आवलिः श्रेणि र्यत्र तथाभूता स्थली सात्वति बलीयसी बलवत्वे हेतुमाह। येति। स्थली स्वृतापि तथा स्मृतं तत्रस्थं चन्द्रसरोवरञ्च अकाण्डे असमये अकस्मादित्यर्थः। तां श्रीराधां तं श्रीकृष्णं स्वीये रसे नटयति अन्य लीलादिविस्मरणपूर्वक तल्लीलायाः मुहुः स्मरणादिकमेवात्र नटनम् ॥१७॥

उस श्रीगोवर्द्धन के पूर्वदिक् में "दान निवर्त्तन" नामक एक कुण्ड है। इस स्थान में ही दानलीला प्रयत्न को परि समाप्ति हुई थी, इसलिए ही यह 'दान निवर्त्तन' नाम से अभिहित है। इस दानलीला का स्मरण कर श्रीराधिका एवं श्रीराधावल्लभ भी सात्त्विक विकार जनित कम्प पुलकान्वित होकर अतीव शोभाशाली होते हैं ॥१६॥

अनन्तर उस 'दान निवर्त्तन' नामक कुण्ड के पूर्व में जो परा रासलीलावली की स्थली विद्यमान है, वह अतीर बलीयसी अर्थात् अद्भुत शक्ति विशिष्टा है। कारण है कि–उस रासस्थली एवं तत्रस्थ चन्द्र सरोवर का स्मरण करने से श्रीराधा व श्रीकृष्ण भी स्वीय रस में नृत्य करते रहते हैं, अर्थात् अन्य लीलादि विस्मृत होने पर केवल उस लीला का ही मुहुर्म्मुहुः स्मरणादि करते रहते हैं ॥१७॥

गोवर्द्धन प्राग्दिशि दक्षिणांशे सङ्कर्षणानन्द सरोवरं तत् ।
तत् पूर्वतो राजति तच्चगौरी तीर्थं न गौरिपति रेति यत्तु॥१८

सदा तया तस्य विहारहेतोः
सौभाग्यभाग्यामृतभूरिभावः ।
तस्याः प्रियं यत्र समस्तविद्या,
पतिश्चकाराशु निकुञ्जविद्यां ॥१९॥

दानकुण्डस्य दक्षिणे तत्सङ्कर्षणकुण्डं यत् पूर्वतः यस्य सङ्कर्षण सरोवरस्य पूर्वे तत् गौरीनाथश्च राजति । यत्तु गौरीतीर्थं स गौरीपति रेति । नेति पाठे गौरीपति र्नेति न आगच्छति गमने गमनाभावे च कारणं श्रीकृष्णरहस्य लीलाभूमित्वात् ॥१८॥

श्रावण पौर्णमासी सौभाग्याख्या तस्यां नायको यया नायिकया सह विलसति सासौ भाग्यवती भवतीति कारणात् सदा तया राधया सह तस्य श्रीकृष्णस्य विहारहेतो स्तस्याः राधायाः सौभाग्य-भाग्यामृताय पौर्णमास्यां यो भावः स भाव एव तस्याः राधायाः यत्र

श्रीगोवर्द्धन के पूर्वदिक् में दानकुण्ड के दक्षिण में संकर्षणानन्द सरोवर नामक श्रीबलदेव के आनन्द-दायक एक कुण्ड है, उस सरोवर के पूर्वदिक् में गौरीतीर्थ शोभित है, किन्तु श्रीकृष्ण की रहस्य लीला भूमि होने के कारण वहाँ पर गौरीपति शिव का आगमन नहीं होता है ॥१८॥

श्रावण पौर्णमासी "सौभाग्य" नाम से अभिहिता है, उस पौर्णमासी में नायक जिस नायिका के साथ विलास करता है, वही भाग्यवती होती है । इस कारण से ही श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण का नित्य विहार है, एवं उस हेतु से ही श्रीराधा भूरिभाग्यसारवती है,

सङ्कर्षणं दान-निवर्त्तनञ्च कुण्डद्वयं यत्तदुरमध्ये ।
महान्न कूटोत्सवमातनोति आनन्दराजो युवराजरञ्जी ॥२०॥
पश्चाच्च तस्योल्लसितास्पदेषु कृष्णस्य केलीकवलीकृतेषु ।
श्रीदानघट्टे सुमणीसुघट्टे यत्रोभयो रासवचो विलासः ॥२१॥

गौरीतीर्थे समस्त विद्यायाः पतिं श्रीकृष्णं निकुञ्जविद्यां प्रियं चकार । विदग्धमाधव नाटकान्ते एषां लीला व्यक्तास्तीति ॥१६॥

युवराज रञ्जितुं शीलंयस्य तथाभूतं महान्नकूटोत्सवं आनन्दराजः सकर्षणकुण्डं दाननिवर्त्तनकुण्डयोर्मध्ये तनोति ॥२०॥

तस्य महान्नकूटस्थानस्य पश्चात् कृष्णस्य केलिभिः कवली कृतेषु ग्रस्तेषु सदा केलियुक्तेषु मध्ये यो दान-घट्ट स्तत्र कीदृशे सुमणीनां घट्ट इति प्रसिद्धः शोभनघट्टो यस्य तत्र दानघट्टे उभयोः श्रीराधा कृष्णयोर्वयो विलासः आस ॥२१॥

और वह भूरिभाग्यभारने ही गौरीतीर्थ में निखिल विद्यापति श्रीकृष्ण को आशु निकुञ्ज विद्याप्रिय किया था ॥१६॥

संकर्षण कुण्ड व दान निवर्त्तन कुण्ड द्वय के मध्य स्थल में ही युवराज श्रीकृष्ण के मनोरञ्जनकारी आनन्दराज स्वरूप महान् अन्नकूटोत्सव सम्पादित होता है ॥२०॥

उस महान्नकूट स्थान के पश्चाद् भाग में ही श्रीकृष्ण की केलि कलान्वित "श्रीदानघट्ट" नामक उल्लासमय स्थान है। इस सुन्दर मणिमय दानघट्ट में ही श्रीराधाकृष्ण के परस्पर वाग् विलास हुआ था ॥२१॥

तद्दानकेली कलिवाग्विलासो विस्मापयामास न कं जनं यः।
तयोरपि श्रोत तटीमटन्नटन्नटी करोत्याशु मनस्तनूंश्च ॥२२॥

पुच्छं मयूराकृति कस्य तस्य,
गोविन्दकुण्डस्य च दक्षिणांशे ।
गलस्थली मानस जाह्नवी सा,
नौ-खेलनं यत्र तयोः सदा स्यात् ॥२३॥

तद् दानेति तयोर्दान केलौ यः कलिः कलह स्तज्जन्यो यो वाचां विलासः स कं जनं न विस्मापयामास। अन्यो जनो दूरेऽस्तु। यो वाग् विलासः तयो राधा कृष्णयोरपि श्रोत्रस्य तटीं अटन् गच्छन् पश्चान्नटन् तयोर्मनस्तनू श्चाशु नटी करोति। तयो वाग्विलास श्रवणार्थं नटी वेति भावः ॥२२॥

मयूरस्येवाकृति र्यस्य तस्य गोवर्द्धनस्य गोविन्दकुण्डस्य च दक्षिणांशे तस्य गोवर्द्धनस्य पुच्छम्। तस्य गोवर्द्धनस्य गलस्थली सा प्रसिद्धामानस गङ्गायत्र मानस जाह्नव्यां सदा तयोः नौखेलनं स्यात्॥२३

इस दानकेलि में प्रेम कलह उपस्थित होने पर जो वाग्विलास संघटित हुआ था, वह किस व्यक्ति को विस्मयापन्न नहीं किया था? अन्य जन की बात तो दूसरी है, उस वाग्विलास श्रीराधाकृष्ण के श्रवणतटी पर्य्यन्त पुनः पुनः गमन कर उन दोनों के तनु मन को आशु नटी के तुल्य किया था ॥२२॥

श्रीगोवर्द्धन की आकृति मयूर की भाँति है, श्रीगोविन्द कुण्ड के दक्षिणांश में ही इसकी पुच्छ है। एवं प्रसिद्ध 'मानस गङ्गा' ही उनकी गलस्थली है। इस मानसगङ्गा में ही श्रीराधाकृष्ण सर्वदा नौका क्रीड़ा करते हैं ॥२३॥

नौ खेलनं यत्र तयोः श्रुतीनां पथं कथञ्चिद् यदि तत् प्रयाति।
तदैव रुद्धं कुरुते बलेन बलेन च त्याजयितुं न शक्यम् ॥२४॥
यस्यास्तटे पुण्ड्रकमण्डपानि त्रैलोक्य शोभा रस मण्डपानि।
तयोर्द्वयो रुज्ज्वल भावितानि भवन्ति नित्यंहृदिभावितानि॥२५

यत्र मानस जाह्नव्यां तयो राधाकृष्णयो र्येन् नौकायाम् खेलन तन्नौखेलनं श्रुतीनां पथं यदि कथञ्चित् प्रयाति, तदैव श्रवणसमय एष तन्नौखेलनं श्रुतिपथं बलेन रुद्धं कुरुतेऽथ मे श्रोताभक्तमात्रस्य तयोश्च ज्ञेयम्। रुद्धं कर्णपथं कैरपि लीलान्तरैश्च बलेन त्याजयितुं नशक्यम् ॥२४॥

यस्याः जाह्नव्यास्तटे पौण्ड्रकस्य माधवी लतायाः मण्डपानि सन्ति। कीदृशानि ? त्रैलोक्यवर्त्तिशोभायाः रसानां मण्डपानि गृहाणि तयो राधाकृष्णयोः उज्ज्वलरसस्य भावो भवनमुत्पत्ति र्येषु तथा भूतानि नित्यं भवन्ति। सर्वेषां तयो र्वा हृदि भावितानि भावना विषयाणि ॥२५॥

उस मानस गङ्गा में श्रीराधाकृष्ण की नौविहार लीला यदि किसी के भी श्रवण पथ में किञ्चन्मात्र भी प्रविष्ट होती है, तब उस लीलाविहार श्रवण पथ को बल-पूर्वक ऐसा रुद्ध करता है, जो अन्य किसी भी लीला उस श्रोता के कर्णपथ में निवास करने में समर्थ नहीं होती है ॥२४॥

उस मानस गङ्गा के तीर में माधवीलता के जो सब मण्डप है, वे सब त्रैलोक्यवर्त्ति शोभा एवं रस का भवन स्वरूप हैं, एवं उस मण्डप सकल के मध्ये ही श्रीराधाकृष्ण के उज्ज्वल रस की नित्य उत्पत्ति होती है। इसलिए ही इस मण्डप समूह सबके ही ऐसा कि श्रीराधाकृष्ण के हृदय में नित्य ही उदित होते हैं ॥२५॥

जलस्थलस्थैः कुसुमैरसीमैः सरन्मरन्दैः कुसुमाकराख्यः।
पद्माकरो राजति कुञ्जपुञ्जै गिरीन्द्रवर्य्याननमेव किं सः॥२६
गोपीस्वरूपाप्ति परप्रसून प्रफुल्लतायै कुसुमाकरोऽयं।
श्रीनारदो यत्र बभूव गोपी स्नानैकमात्रादिति मोहनोक्तिः॥२७

कुसुमाकराख्यः पद्माकरः सरोवरः कुसुम सरोवराख्यः यतः सीमारहितैः सरन्मरन्दैः क्षरन्मकरन्दैः तीरे कुञ्ज पुञ्जैश्च सहितो राजति। सः कुसुमाकराख्यः सरोवरः प्रसिद्धोबभूव स गिरीन्द्रवर्यः, तस्य आननमेव किम् ॥२६॥

जलस्थल कुसुमानामाकरत्वेन कुसुमसरोवरशब्दस्य व्युद्पत्ति मुक्त्वा गोपीस्वरूप प्रापकत्वेनाप्याह। गोपीति। गोपीश्वररूप प्राप्तिरेव पर प्रसूनानि श्रेष्ठ पुष्पानि तेषां प्रफुल्लतायै प्रकाशार्थमप्ययं कुसुमाकरः नामा। एतदेवाह। यत्र कुसुमसरोवरे नारदः स्नानैक मात्रात् गोपी बभूव। मोहनस्य श्रीकृष्णस्योक्तिः अतोऽत्र विप्रति-पत्तिर्नास्तीति भावः ॥२७॥

वहाँ पर कुसुमाकर नामक एक सरोवर है, इस सरोवर के जल में व स्थल में असंख्य कुसुमराजि से निरन्तर मकरन्द क्षरित होता है, एवं तीर में विविध कुञ्ज-पुञ्ज शोभित है। इस प्रसिद्ध कुसुम सरोवर ही उस गिरिराज श्रीगोवर्द्धन के मुख स्वरूप है ॥२६॥

जलज व स्थलज कुसुम समूह के आकार स्वरूप "कुसुम-सरोवर" शब्द की व्युत्पत्ति का उल्लेख कर सम्प्रति उसका गोपी स्वरूप प्रापकत्व की वर्णना करते हैं। पर प्रसून समूह की अर्थात् श्रेष्ठ कुसुमराजि की गोपी स्वरूप प्राप्ति रूप प्रफुल्लता के कारण ही इसका नाम कुसुमाकर है, श्रीकृष्ण कहे हैं—इस कुसुम सरोवर में श्रीनारद ऋषि स्नान मात्र से ही गोपीस्वरूप प्राप्त किये थे ॥२७॥

यं पाणिना पालयदीश एव यो पालयत्तत् परिवारमेव ।
क्रीड़त्यजस्रं स्वयमेव यत्र स केन वर्ण्यो हरिदासवर्य्यः ॥२८
श्रीराधिका कृष्ण सरोवरे ते तत् प्रेम पूर्णे किल यस्य नेत्रे ।
गोवर्द्धनोभाति सगोपगोपी गोवर्द्धनोमाधव-माधुरीभ्यः ॥२९

ईशः श्रीकृष्णः यं गोवर्द्धनं इन्द्र कृतातिवृष्टिसमये पाणिना पालयत् यो गोवर्द्धन तस्य कृष्णस्य परिवारमपालयत् । स्वयं श्रीकृष्णः यत्राजस्रं सदा क्रीड़ति । स हरिदासवर्यः केन वर्ण्यते ॥२८॥

तयो राधाकृष्णयोः प्रेम्णा पूर्णे ते प्रसिद्धे श्रीराधिका सरोवर श्रीकृष्ण सरोवरे यस्य गोवर्द्धनस्य नेत्रे स गोवर्द्धनो भाति । माधवः श्रीकृष्ण वसन्तश्च तयोर्माधुरिभ्यश्च स भाति । गोपानां गोपीनां गवां च वर्द्धनः ॥२९॥

भगवान् श्रीकृष्ण जिस शैलराज को वाम-कर से धारण पूर्वक इन्द्रकृत अतिवृष्टि से स्वीय परिजन वर्ग की रक्षा किये थे, एवं स्वयं भी जहाँ पर निरन्तर क्रीड़ा करते हैं, उस गोवर्द्धन पर्वत के विषय की वर्णना कौन कर सकता है ? ॥२८॥

श्रीराधाकृष्ण के प्रेमपूर्ण प्रसिद्ध श्रीराधा सरोवर व श्रीकृष्ण सरोवर अर्थात् श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड ही जिनके नयन द्वय स्वरूपा है, उस श्रीगोवर्द्धन पर्वत ही श्रीकृष्ण व ऋतुराज वसन्त की माधुरी के सहित गोप-गोपी व गो समूह के वर्द्धन स्वरूप में शोभित है ॥२९॥

लावण्यवन्यामृत शुद्धकन्दो शोभा-समुद्रातिशयाशयौ ये ।
माधुर्य्य चर्य्याचयचारुमूले श्रीराधिका कुण्ड मुकुन्द कुण्डे ।।३०

द्वयोस्तयो प्रेममणी खनी ये विलास रत्नावलि वल्लिवीजे ।
रसैकरूपे मधुर स्वरूपे किन्तौ लसन्तौ सरसी भवन्तौ ।।३१।।

ये द्वे कुण्डे लावण्य वन्याभिः सह अमृतमयं शुद्धं कं सुखं जलं च तस्य दातारौ । शोभासमुद्रातिशयस्याशयौ माधुर्य्यचर्य्याश्च यस्य समूहस्य चारुमूले ।।३०।।

तयो र्द्वयो र्ये कुण्डे ते प्रेमरूपमणीनां खनी उत्पादके । विलास रूपा रत्नावलीनां या वल्ली तासां वीजे । तौ राधाकृष्णयोः सरसी भवन्तौ सन्तौ लसन्तौ ।।३१।।

श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड लावण्यवन्या रूपा अमृत शुद्ध सुख अथवा सलिल दाता हैं, एवं शोभा समुद्र का एकमात्र आश्रय स्वरूप हैं, एवं इस कुण्ड द्वय के चारुमूलदेश में माधुर्य्यचर्य्या समूह विद्यमान हैं ।।३०।।

इस श्रीकुण्ड द्वय प्रेमरूपा-मणि के खनि स्वरूप, विलास रत्नावलि लता के वीज स्वरूप व एकमात्र मधुर रस स्वरूपा हैं । अतएव श्रीराधाकृष्ण ही क्या कुण्ड द्वय रूप में शोभित हैं ? ।।३१।।

यथो विलोकेन तयोः प्रतीति स्तयोरिव स्यादनुभूतिभूतिः ।
साक्षादवाप्तिश्च तथानवद्या सद्यो भवत्येव वदन्ति विद्याः ॥३२
द्वयोः सुदुर्लभ्यतयायदिस्यात् परस्परोत्कण्ठित भूरिभारः ।
द्वावेव यद्वन्द्वसमाश्रयातौ परस्परप्राप्तिरसातिसिक्तौ ॥३३

यथोः कुण्डयोर्विलोकनेन तयो राधाकृष्णयोः तयोरिव राधा कुण्डस्य दर्शनेन श्रीकृष्णस्य राधायाः प्रतीतिः तथैव कृष्ण कुण्डे श्रीराधायाः श्रीकृष्णस्य प्रतीतिः स्यात् । अनुभूतिरनुभव स्तस्य भूति रुत्पत्तिश्च पूर्ववत् परस्परः स्यात् । राधाकृष्ण-कुण्डयो दर्शनेन राधाकृष्णयोः साक्षादनवद्याऽनिन्द्या प्राप्तिश्च सर्वेषां तयो र्वाप्तिः सद्यो भवत्येवेति विद्याः शास्त्रीयाः वदन्ति ॥३२॥

द्वयो श्रीराधा कृष्णयोः परस्पर दुर्ल्लभयतया यद्युकण्ठितः भूरि भावः स्यात्तदा द्वौ राधाकृष्णौ यद्द्वन्द्वयस्य सम्यागाश्रयातौ परस्पर प्राप्तिरसेनाति सिक्तौ भवत इति शेषः ॥३३॥

उस कुण्ड द्वय के दर्शन से श्रीराधाकृष्ण की परस्पर प्रतीति व अनुभूति की उत्पत्ति होती है, अर्थात् श्रीराधाकुण्ड के दर्शन से श्रीकृष्ण की श्रीराधा प्रतीति व अनभूति होती है, एवं श्रीश्याम कुण्ड दर्शन से श्रीराधा की श्रीकृष्ण प्रतीति व अनुभूति होती है । इसलिए शास्त्रविद्गण कहते हैं कि—श्रीराधाश्याम कुण्ड द्वय दर्शन से सब जन की श्रीराधाश्याम की साक्षात् अनिन्दनीय प्राप्ति सद्यः होती है ॥३२॥

श्रीराधाकृष्ण जब परस्पर सम्मिलनदुर्लभता हेतु विरहोत्कंठा से अतिमात्र प्रपीड़ित होते हैं, तब वे दोनों श्रीकुण्ड द्वय का सम्यग् आश्रय लाभकर परस्पर प्राप्तिरस से अर्थात् मिलनानन्द रस से अतिशय अभिषिक्त होते हैं ॥३३॥

राधैव कुण्डं द्रवतां गताभूत् कृष्णेक्षणानन्द भरेण मन्ये ।
कृष्णोऽपि राधेक्षणमोदभारात् तेनैव तन्नामगुणाद्विकुण्डी ॥३४

कारुण्य मात्रातिशयाज्जनेषु,
स्वकीय माधुर्य्यभरानुभूत्यै ।
तौ स्तो द्रवन्तौ सरसी भवन्तौ,
मज्जन्ति सन्त स्तदिहोल्लसन्तः ॥३५॥

कृष्णेक्षणानन्देन राधैव द्रवतां गतां सती राधाकुण्डमभूदित्यहं मन्ये । तथा श्रीराधा दर्शनानन्देन श्रीकृष्णोऽपि कृष्णकुण्डमभूत् । तेनैवोक्तेनैव हेतुनाद्वयोः कुण्डयोः समाहारः द्विकुण्डी तन्नामगुणा स्तयो राधाकृष्णयो र्नाम्नागुणेन च युक्ता ॥३४॥

जनेषु कारुण्यमात्रस्यातिशयात् जननिष्ठयोग्यायोग्य विचार गन्धा शून्याद्धेतोः जनेषु या स्वकीय माधुर्य्यभरानुभूति रनुभवस्तस्मै तदर्थं तौ राधाकृष्णौ । द्रवन्तौ स्तः भवतस्ततः सरसी भवन्तौ तत्तस्मादिह, कुण्डद्वये सन्तोजनाः उल्लसन्तः सन्तः मज्जन्ति ॥३५॥

मन में होता है कि–जैसे श्रीकृष्ण दर्शनानन्द से श्रीराधा द्रवीभूता होकर ही श्रीराधाकुण्ड एवं श्रीराधा दर्शनानन्द से ही श्रीकृष्ण द्रवीभूत होकर ही श्रीश्यामकुण्ड हुए हैं। इस कारण से ही उक्त श्रीकुण्ड द्वय श्रीराधाकृष्ण के नामगुण समन्वित हुए हैं ॥३४॥

जीवगण के प्रति योग्यायोग्य विचार गन्ध शून्य कारुण्यातिशय्य प्रदर्शन के निमित्त एवं जीवगण को स्वकीय माधुर्य्य की पराकाष्ठा अनुभव कराने के लिए ही श्रीराधाकृष्ण जैसे द्रवीभूत होकर इस सरसी द्वय रूप में अर्थात् श्रीराधाकुण्ड व श्रीश्यामकुण्ड रूप में परिणत हैं। इस कारण से ही साधु व्यक्तिगण इस कुण्डद्वय के दर्शन से उल्लसित होकर उनमें निमग्न रहते हैं ॥३५॥

प्रेमैव तद्युग्म वरस्य युग्मं कुण्डस्य मन्ये तदिहाशु धन्याः ।
मज्जन्ति तन्मज्जनमात्रमेव प्रेम्नीति नाम्नापि तयोर्द्विकुण्डी॥३६

तयो रसो यो मधुरः स एव,
वर्ण द्वयाद्यन्तविपर्य्ययेन ।
विराजतेऽत्यन्तरहस्यभावा-
न्मज्जन्ति तज्ज्ञाः सर इत्युदीर्य्य ॥३७॥

तत् कुण्डस्य युग्मं युग्मवरस्य राधाकुण्डस्य प्रेमैवाहं मन्ये। तत्तस्मात् इह कुण्डयुग्मे आशु धन्या जनाः मज्जन्ति । तन्मज्जन मात्रं तस्मिन् कुण्ड युग्मे मज्जनमात्रमेव प्रेम्णि मज्जन्ति ॥३६॥

तयो र्यो मधुरो रसः स एव रस वर्ण द्वय एव इति विपर्य्ययेण सर इति नाम्ना विराजते । तज्ज्ञाः उक्त प्रकारज्ञाः तं रसं सर इत्यु दीर्य्यत मज्जन्ति । अत्र हेतुमाह, अत्यन्त रहस्यभावादिति ॥३७॥

अनन्तर ग्रन्थकार स्वीय अभिप्राय को व्यङ्ग करके कहते हैं। उस कुण्ड द्वय को मैं श्रीराधाकुण्ड को प्रेमकुण्ड ही मानता हूँ, कारण सुकृतिमान् व्यक्तिगण ही इस श्रीकुण्डद्वय में आशुनिमग्न होते हैं, अथवा जो सब व्यक्ति इस कुण्ड-द्वय में आशुनिमग्न होते हैं, वे सब ही धन्य हैं। क्यों उसमें मज्जनमात्र से ही वे सब प्रेम से अभिषिक्त होते हैं ॥३६॥

श्रीराधाकृष्ण के जो मधुर रस है, वही सर्वश्रेष्ठ रस है, इस "रस" शब्द का वर्ण विपर्य्यय करने से "सर" पदनिष्पन्न होता है। सुतरां श्रीराधाकृष्ण के मधुर रस ही जैसे यह "सर" अर्थात् सरसो व कुण्ड रूप में विराजित है। यह अत्यन्त रसस्य भाव के विषयों को जो लोक अवगत होते हैं, ये सब ही 'तं रसं सरः' अर्थात् उस मधुर रस ही यह सर अथवा कुण्ड स्वरूपा हैं, इस प्रकार उच्चारण करके उसमें निमग्न होते हैं ॥३७॥

तयोर्द्वयोरेवनिकुञ्ज पुञ्जे विलस्य नानाविध रस्यभावैः ।
निरीक्षितुं कुण्ड युगं स कुञ्जं युग्यं तयोः स्यात्तु चकोरयुग्मं॥३८

द्वयोरति प्रीति परस्परं त-
च्छ्रीराधिका कुण्डमखण्डशोभं ।
समन्ततो यस्य निकुञ्ज पुञ्जाः,
सखीजनानां भ्रमरालिगुञ्जाः ॥३९॥

तयोः कुण्डयोः निकुञ्ज समूहे नाना भावैः विलस्य तयो राधा कृष्णयो र्युग्मं कर्त्तृ स कुञ्जं कुण्डयुग्मं निरीक्षितुं चकोर युग्मं स्यात् ॥३८॥

द्वयो राधा कृष्णयो रतिशयेन प्रीति परम्परा यत्र तत् श्रीराधा कुण्डम् । यस्य राधाकुण्डस्य समन्ततः सखी जनानां निकुञ्ज पुञ्जाः सन्ति । कीदृशः ? भ्रमर श्रेणीनां गुञ्जाः शब्दाः यत्र ॥३९॥

उस कुण्ड द्वय के तीरवर्त्ती निकुञ्ज समूह में नानाविध रसमय भाव के साथ लीला विलास करके भी श्रीराधाकृष्ण युगल उस निकुञ्ज श्रीकुण्ड-द्वय को निरीक्षण के निमित्त चकोर युगल के समान सतृष्ण रहते हैं ॥३८॥

जिस श्रीकुण्ड के प्रति श्रीराधाकृष्ण उभय की ही अतिशय प्रीति हैं, उस श्रीराधाकुण्ड अखण्ड शोभान्वित हैं, इसके चारोंदिक् में ही सखीगण के भ्रमर गुञ्जित निकुञ्ज पुञ्ज विद्यमान हैं ॥३९॥

तदुत्तरे श्रीललिता प्रमोदं निकुञ्ज पद्मं मणिमात्र सद्मः ।
ईशान कोणे कुसुमैक क्लृप्तं कुञ्जं विशाखा प्रमदं प्रभाति ॥४०
पूर्वे यदीयेऽखिल चित्र कुञ्ज चित्रा प्रमोद दलपुष्पचित्रं ।
पूर्णेन्दु कुञ्जेऽनलकोणमूले य इन्दुलेखाप्रमदः प्रगीतः॥४१

सखीनां कुञ्जान्येवाह । तदुत्तर इति । तस्य राधा कुण्डस्योत्तरे ललिता याः प्रमोदो य एतत् ललिता प्रमोदमिति नाम च निकुञ्ज पद्मं निकुञ्ज एव पद्माकारम् । मणिमात्र सद्मः मणिमयः सद्म गृहं यत्र तत् कुञ्जं भाति । ईशानकोणे विशाखा प्रमोदं नाम विशाखायाः कुञ्जं प्रभाति ॥४०॥

पूर्वे चित्रायाः कुञ्जं । कीदृशं ? अखिलं चित्रं यत्र तथाभूतं कुञ्जम् । चित्रायाः प्रमोदो यत्र तथाभूतं दलपुष्पै श्चित्रं मनोहरं चित्र कुञ्जमिति चित्रा प्रमोदमिति नामद्वयं ज्ञेयम् । अनल कोणस्याग्नि कोणस्यमूले यः कुञ्ज स इन्दुलेखा प्रमदः पूर्णेन्दु कुञ्जश्च नाम्ना प्रगीतः ॥४१॥

उस श्रीराधाकुण्ड के उत्तरदिक् में श्रीललिता प्रमोद नामक श्रीललिता सखी के मणिमय पद्माकार निकुञ्ज भवन अवस्थित हैं, एवं उसके ईशान कोण में श्रीविशाखा प्रमोद नामक श्रीविशाखा सखी का कुसुममय कुञ्ज सुशोभित हैं ॥४०॥

श्रीराधाकुण्ड के पूर्वदिक् में चित्रासखी के अखिल चित्रशोभित एवं तदीय आनन्द-जनक दल पुष्प रचित मनोहर चित्रा प्रमोद नामक कुञ्ज विद्यमान है, एवं अग्नि कोण के मूल में जो कुञ्ज हैं, वह हो श्रीइन्दुलेखा का प्रमदगृह-पूर्णेन्दुकुञ्ज नाम से अभिहित हैं ॥४१॥

यद्दक्षिणे प्रेम निकुञ्जवर्य्यं श्रीचम्पक वल्लीसुखदं चकास्ति ।
यत्र स्थिते राधिकयापि कृष्णे राधामवीक्ष्येव गतैव वृद्धा ॥४२
यन्नैऋ ते नीलनिकुञ्जकुञ्जे श्रीरङ्गदेवी सुखदेन्द्रनीले ।
श्रीराधयासीनमवेक्ष्य कृष्णं तां श्लाघयित्वा जरती गतारं॥४३

चम्पक लतायाः सुखदं हेममयं निकुञ्जवर्यं यद् दक्षिणे चकास्ति अत्रापि कुञ्जस्य नामद्वयं ज्ञेयम् । यत्र कुञ्जे वृद्धा जटिला स्वर्णेन सह श्रीराधिकायाः वर्णैक्यात् राधामवीक्ष्येव गतैव नतु क्षणमपि स्थिता ॥४२॥

यस्य नैऋत कोणे नील निकुञ्जाख्य कुञ्जे श्रीरङ्गदेवी सुखदश्चासौ इन्द्रनीलमणिश्च तस्मिन् श्रीराधया सहासीनमपि कृष्णं इन्द्रनीलमणिकुञ्जेन सह श्रीकृष्णवर्णस्यैक्यादेव श्रीकृष्णमवीक्ष्य तां राधां श्लाघयित्वा अरं शीघ्रं जरती जटिला गता ॥४३॥

उक्त श्रीकुण्ड के दक्षिण में श्रीचम्पकलता सखी का सुखद स्वर्णमय कुञ्ज शोभित है, उस स्वर्णमय कुञ्ज में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण अवस्थान करने पर भी स्वर्ण के साथ श्रीराधा के वर्णसाम्य हेतु वृद्धा जटिला श्रीराधा को प्रत्यक्ष देखकर पहचानती नहीं और वहाँ से चली जाती है, क्षणकाल भी रुकती नहीं ॥४२॥

उस श्रीकुण्ड के नैऋत कोण में श्रीरङ्गदेवी का 'नीलनिकुञ्ज' नामक इन्द्रनीलमणिमय सुखद कुञ्ज विद्यमान है, उस नील कुञ्ज में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण अवस्थान करने पर भी इन्द्रनीलमणि कुञ्ज के सहित श्रीकृष्ण के वर्णसाम्य हेतु श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष देखकर भी पहचानती नहीं, और जटिला श्रीराधा की प्रशंसा करते-करते वहाँ से शीघ्र प्रस्थान करती है ॥४३॥

श्रीतुङ्गविद्या सुखदंनिकुञ्जं यत्र पश्चिमे भात्यरुणंतदाख्यं ।
श्यामं निकुञ्जं किलवायुकोणे सुखाय यन्मारकतं सुदेव्याः॥४४
श्रीकुण्डमध्येऽपि जलोपरिस्थं विचित्र संख्यं मणिमन्दिरं यत् ।
अनङ्ग मञ्जर्य्यनुरागभागं भाग्यं विना कस्तदवैतुलोक: ॥४५

तदाख्यमरुणाख्यमरुणमरुणवर्णं कुञ्जं भाति सुदेव्या सुखाय मारकतं निकुञ्जं श्यामं भाति ॥४४॥

श्रीराधाकुण्डस्य मध्येऽङ्ग मञ्जर्य्या अनुराग भजत इत्यनुराग भाक् तमनुरागभागं तथाभूतं यन्मणिमन्दिरं तत् भाग्यं विना को लोक: अवैतु ॥४५॥

पश्चिम दिक् में श्रीतुङ्गविद्या सखी का "सुखद अरुण कुञ्ज" नामक अरुण वर्ण विशिष्ट कुञ्ज हैं, एवं वायु कोण में श्रीसुदेवी नाम्नी सखी का सुखप्रद मारकत कुञ्ज नामक श्यामवर्ण अर्थात् कृष्ण पीत मिश्र वर्ण कुञ्ज शोभित हैं ॥४४॥

श्रीराधाकुण्ड के मध्ये जल के ऊपर जो मणि-मन्दिर विचित्र रूप में अवस्थित है, वह श्रीअनङ्गमञ्जरी की अनुरागमयी भजन का निदर्शन हैं। सुतरां सौभाग्य व्यतिरेक से कौन व्यक्ति वह प्राप्त कर सकता है ॥४५॥

श्रीकुण्डमेतन्निखिलाश्च कुञ्जा पदश्च पन्थाश्च यथा यथैषां ।
गोविन्दलीलामृत एति सर्वं गोविन्दलीलामृतमान्यगर्वं ॥४६
रहस्य लीलावलि वल्गुनादाः प्रमत्तराधाख्य यदादि पादाः ।
नन्दीश्वराद्दक्षिण पश्चिमादौ यन्मध्यतः काम्यवाद्यनादौ ॥४७

एषां श्रीकुण्ड कुञ्ज पदपथां यथा यथा येन येन प्रकारेण अवस्थिति स्तत् सर्वं गोविन्दलीलामृताख्यग्रन्थे एति प्राप्नोति । विशेष जिज्ञासाचेत् तत्रान्वेष्टव्यमितिभावः । यद्वा यथायथं यथा योग्यं सर्वं गोविन्दलीलामृते एति । गाविन्दलीलामृतमयएवसर्वं गोविन्द-लीलामृतेन मान्यं गर्वं यत् यस्य तत् ॥४६॥

नन्दीश्वराद् दक्षिण पश्चिमादि दिशि कीदृश्या वनादौ रहस्य लीलावलि वल्गुनं बहुभाषणं दातु ज्ञापयितु शीला यन्मध्यतो दक्षिण पश्चिमस्थ ग्रामाणां मध्ये काम्यवनादि । प्रमत्ता प्रेम्ना प्रमत्ता राधा यत्र तदाख्यपदं आदिपादे येषां ते ॥४७॥

इस कुण्डद्वय निखिल कुञ्ज, चिह्नित स्थानं एवं पथ सकल जिस-जिस रूप में अवस्थित हैं, तत् समुदाय ही गोविन्द-लीलामृत नामक ग्रन्थ में यथा योग्य रूपेण विवृत हैं, सुतरां विशेष विवरण उक्त ग्रन्थ से ज्ञातव्य है, परन्तु वे सब गोविन्द-लीलामृतमय हेतु सर्वलोक मान्य एवं गरीयान् हैं ॥४६॥

अनादिसिद्ध नन्दीश्वर के दक्षिण, पश्चिम दिक् में बहुतर ग्राम हैं, उस दक्षिण पश्चिमस्थ ग्राम समूह के मध्य में ही काम्यवनादि अवस्थित हैं, यह सब वन श्रीराधाकृष्ण की रहस्य लीलावली के सम्बन्ध में बहु कथा ज्ञापन करते हैं। एवं उस वनराजि के प्रथमांश में ही प्रेमोन्मत्ता श्रीराधा के पदचिह्न व महिमा प्रकटित है ॥४७॥

यत्राखिलैश्वर्य्यमहार्य्यलीलाबलीबलीयस्यबलेव लीना ।
माधुर्य्यं चर्य्याचयचारुवर्य्या चार्य्यस्य पादाम्बुज सौरभेषु ॥४८

श्रीरामलीलावलिसाक्षिलङ्का,
कुण्डं महोद्दण्डरसाब्धितुण्डं ।
यत्रोदिता श्रीलमुकुन्दकेली,
श्रीराधिकारञ्जनमञ्जुपञ्ज्री ॥४९॥

यत्र काम्यवने माधुर्यमय लीलासु ऐश्वर्यमयी लीला लीनाबभूवेत्याह । अखिलेति । माधुर्य्यमयी या चर्य्या लीला तस्याश्चयः समूहः सएव चारुवर्यो मनोज्ञोत्तमस्तेषामाचार्यस्य पदाम्बुज सौरभेषु अखिलमैश्वर्यं यत्र, तथाभूता या महार्य्य लीलावली सैव बलीयसी सा अबला इव लीना बभूव ॥४८॥

एकदा काम्यवने श्रीराधिकयासह श्रीकृष्णस्य कथा प्रसङ्गे ऐश्वर्य्यमयी श्रीरघुनाथ लीलाकथा गता तां श्रुत्वा सा कृष्णमाह, समुद्रबन्धनादि लीलां कुरु । ततः सा लीला तेन चक्रे । तस्याः सूचकेनानेन पद्येन माधुर्य्यमयी लीलासु महैश्वर्यमय लीलाया लीन

उस काम्यवन में ऐश्वर्य्यमयी लीला समूह माधुर्य्यमयी लीला समूह के मध्य में विलीन हो गये हैं, माधुर्य्यमयी लीला समूह अतीव मनोहर हैं, उस लीलावली के आचार्य्य के पादाम्बुज सौरभ में अखिल ऐश्वर्य्यमय महार्य्य लीलावली महाबलीयसी होकर भी अबला की भाँति लीन हो गयी थी ॥४८॥

एकदा काम्यवन में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण की कथा प्रसङ्ग में ऐश्वर्य्यमयी श्रीरघुनाथ लीला-कथा हो रही थी, इसके श्रवण से श्रीराधा ने श्रीकृष्ण को उस प्रकार लीला करने के लिए कहा, श्रीकृष्ण भी प्रियतमा के मनोरञ्जनार्थ उस प्रकार लीलानुष्ठान

लुक्कायना ख्याति विचित्र केलौ,
श्रीराधया माधव माधुरी सा ।
यत्रोदिता चित्र तदालिमाला,
मालापने चित्रयतीव यातौ ॥५०॥

प्रकार माह । श्रीरामेति । श्रीरामलीलावलीनां साक्षीभूतं यल्लङ्का कुण्डम् कीदृशं ? महोद्दण्ड रस समुद्रस्य तुण्डं मुखं मुखस्य धर्ममाह । यत्र तुण्डे मुकुन्दस्य केली उदिता कथिता । कीदृशी श्रीराधिकायाः रञ्जनस्य मञ्जुपञ्जी । श्रीराधिकायाः रञ्जनार्थं प्रीत्यर्थं समुद्रबन्धन लीला श्रीकृष्णेन कृतावेति कुण्डमेव कथयतीति वाक्यार्थम् । मञ्जुपञ्जी मनोज्ञ पांजी पत्रेति ख्याता ॥४९॥

यत्र काम्य वने लुकायनकेलौ राधयासह कृष्णस्य सा माधुरी उदिता या माधुरी तदालापने मनोज्ञ कथने सति तौ राधा कृष्णौ च चित्रीयतीव चित्रमिवाचरतीव या तौ। अहो एतादृश्यत्यद्भुत लीला तद्दिने जातेत्यादि ॥५०॥

किये थे। इस सूचना के अनुसार ही माधुर्य्यमयी लीला में ऐश्वर्य्यमयी लीला की विलीनता उक्त हुई है। श्रीकृष्ण श्रीराधा के मनोरञ्जन के निमित्त जो मञ्जु-पुञ्जी केलिकथा कहे थे, एवं समुद्र बन्धनादि-लीला भी किये थे, उस श्रीरामलीलावली का साक्षीभूत जो लङ्काकुण्ड है, वह महोद्दण्ड रस समुद्र का मुख स्वरूप में शोभित है ॥४९॥

उस काम्यवन में 'लुक्कायन" (आँख मिचौनी) (लुकोचुरि) नामक विचित्र क्रीड़ा में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण की जो अपूर्व माधुरी का उदय होता है, अहो ! सखीगण जब उस क्रीड़ा माधुरी की कथा कहती हैं, तब श्रीराधाकृष्ण अतीव आश्चर्य्यान्वित होकर चित्रवत् अवस्था प्राप्त करते हैं ॥५०॥

एवम्विधानेक रसास्पदानि कुण्डानि कुञ्जानि लसन्ति यत्र ।
कृष्णस्य काम्यानि वनानि यत्र सन्तीति तत् काम्यवनं वदन्ति॥
सूर्य्यस्य मूर्त्तिःसरसी च यत्र श्रीराधिकायाश्च तदर्च्चनायाः ।
वदन्ति यच्छान्त्वनुवास संज्ञं तदीक्षणानीव तदीक्षणानि ॥५२

काम्यवननाम्नो व्युत्पत्तिमाह । एवम्विधेति ॥५१॥

काम्यवनस्योत्तर दिशायां शान्त्वनुवास इति ख्यातंयच्छान्तनुवास संज्ञं वदन्ति । यत्र वासं सूर्यस्य मूर्त्तिरस्ति तथा श्रीराधिकायाः सरसि तदर्च्चनायाः सूर्य्यस्य अर्च्चनार्थं सरसी चास्तिशान्त्वनु मुनेरयं शान्त्वनुवास संज्ञं । तदीति तेषां सूर्य्य राधिकादीनामीक्षणानीव तेषां सूर्य्य मूर्त्ति सरसीणामीक्षाणि ॥५२॥

अतः पर "काम्यवन" नाम की व्युत्पत्ति (अर्थात् इस वन को काम्यवन क्यों कहा जाता है), कही जाती है, जहाँ पर इस प्रकार बहु रस के आस्पद कुण्ड व कुञ्ज समूह विराजित हैं, एवं जहाँ पर श्रीकृष्ण के अभिलषित वनराजि शोभित हैं, उसको ही काम्यवन कहा जाता है ॥५१॥

काम्यवन के उत्तरदिक् में जो आवास स्थान है, वह 'शान्त्वनुवास' नाम से अभिहित है, यह शान्त्वनु मुनि का वास स्थान होने के कारण ही शान्त्वनुवास नाम से ख्यात है, वहाँ पर सूर्य्य प्रतिमा एवं सूर्य्य पूजा के लिए श्रीराधा की एक सरसी है, उस सूर्य्य मूर्त्ति व सरसी दर्शन से साक्षात् सूर्य्यदेव व श्रीराधिका का दर्शन सिद्ध होता है ॥५२॥

छदिः शिलायत्र तदाह्वशैले कृष्णस्य नाना कुतुकास्पदानि ।
कृष्णस्य कौतूहल वास्पदानि कृष्णस्य कौतूहल वास्पदानि॥५३

नन्दस्य नव्योनिलयोऽस्ति यत्र,
रत्नाकरो रत्नसरश्छलेन ।
लीलावलोके युतयैव लीनो,
लालित्यलाल्यं ललितादि कुण्डम् ॥५४॥

प्रान्तेतु पटलं च्छदिः तदाह्वशैलेछदिः शिलाह्व पर्वते कृष्णस्य नाना कुतुकानामास्पदानि सन्ति । कौतुहलानां मास्पदानि आनन्दाश्रुदानि, को पृथिव्यां तु पुन ऊहलवस्य वितर्क लवस्यास्पदानि ॥५३॥

लीलाया अवलोकने इषुतयैव इच्छुनयैव रत्नसरोवर छलेन रत्नाकरः समुद्रः तत्रलीनः सन्नास्ति । लालित्येन लाल्यं ललिता विशाखा पौर्णमास्यादि कुण्डं तत्रास्ति । कुत्र यत्र नन्दस्य नव्यो निलयो गृहमस्ति ॥५४॥

प्रान्त भाग में प्रस्तर की छत विशिष्ट छदिशिला नामक पर्वत में श्रीकृष्ण के विविध कौतुक का विषय है, अथवा श्रीकृष्ण के आन्नदाश्रुप्रद बहु विषय है, एवं श्रीकृष्ण के धराधाम में वितर्कलव के बहु आस्पद हैं ॥५३॥

जहाँ पर श्रीनन्दराज के नूतन भवन है, वहाँ पर ललिता विशाखा पौर्णमासी प्रभृति के कुण्ड भी विद्यमान है। जैसे रत्नाकर अर्थात् समुद्र लीलावलोकन के प्रति इच्छुक होकर ही वे सब रत्न सरोवर के छल में वहाँ पर लीन होकर हैं ॥५४॥

परस्परालापमदं निपीय परस्पराङ्गालस लग्नमत्तौ ।
विलोक्य तौ लोकयितुं तदाल्यो विच्छेदगायत्रतदाह्वयंतत्॥५५
तप्त्वा न यद्भावमवाप लक्ष्मी लक्ष्मी स्वभावं कुतुकेन नीत्वा।
सा कान्तमालापयदेव यत्र किम्वा न कौतूहलमस्ति तत्र ॥५६

राधा कृष्णयोः परस्परालाप एव मदस्त निपीय आलाप मदपान जन्यं यत् परस्पराङ्गानामालस्यं तेन लग्न तया मत्तौ विलोक्य तौ राधाकृष्णौ विलोकयितुं तयो राल्यो यत्र विच्छेदगा नानास्थानगा बभूवु । तदाह्वयमालोकनाख्यं ॥५५॥

लक्षी तप्त्वा तपः कृत्वा यद्भावं यस्य राधिकया भावं न अवाप सा राधिका यत्र कुतुकेन लक्ष्मी स्वभाव नीत्वा कान्त श्रीकृष्ण मालापयत् तत्र किम्वा कुतूहल नास्ति ॥५६॥

अतः पर श्रीराधाकृष्ण परस्पर आलापन-मदपान जनित आलस्य से परस्पर को लग्नगात्र व प्रमत्त देखकर सखीगण उन दोनों को अवलोकन करने के लिए जहाँ पर समवेत हुये थे। उस-उस स्थान ही तत्तत् नाम से आख्यात हैं ।॥५५॥

श्रीलक्ष्मी देवी तपस्या करके भी श्रीराधिका के जिस भाव को लाभ करने में समर्थ नहीं है, वह श्रीराधिका कौतुहल वशतः लक्ष्मी के स्वभाव को अनायास ग्रहण कर प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ आलाप किये थे। सुतरां वहाँ पर सकल कौतुक का ही विषय है॥५६

क्षीरोदधिः शेष विशेषरूपं स शेषशायी स्वयमस्ति सापि ।
तत् पाद सम्बाहन भक्तिनम्रा सखी जनानां कुतुकार्यकम्रा॥५७

मुख्येष्विह द्वादशकाननेषु,
वृन्दावनेन्दोरखिल प्रियाणां ।
कुञ्जादि नाना कुतुकास्पदानि,
लक्ष्म्यापि लक्ष्म्या हृदि वाष्पदानि ॥५८॥

श्रीराधिकाया लक्ष्मीभाव ग्रहण कार्यमाह । यत्र क्षीरोददधिरस्ति । शेषस्य विशेष रूपं प्रकार विशेषं तथा स्वयं श्रीकृष्णश्च यत्रास्ति । सापि श्रीराधापि तस्य शेष शायिनः पाद सम्बाहन भक्तौ नम्रा सती यत्रास्ति । कीदृशी सखीनां कुतुकार्थकम्रा सकामा ॥५७॥

वृन्दावनेन्दोः श्रीकृष्णस्याखिल व्रजसुन्दरीणां लक्ष्म्यापि सम्पद्रूपयाः शोभाया अपि आस्पदानि कुञ्ज कुण्ड मन्दिरादीनि नानाकौतुक स्थानानि द्वादशमुख्य वनेषु सन्ति । लक्ष्याः श्रीलक्ष्मी देव्या हृदि वाष्पदानि अश्रुदानि ॥५८॥

श्रीराधिका लक्ष्मीभाव ग्रहण कर क्या किये थे, उस विषय इस श्लोक में विवृत है । क्षीरोद समुद्र में अनन्तदेव के प्रकाश विशेष के समान वहाँ पर श्रीकृष्ण स्वयं अनन्तशायी रूप में अवस्थान करते हैं, और श्रीराधिका सखीगण के कौतुक विधान की अभिलाषिणी होकर उनके पद-सम्बाहन भक्ति से विनम्र होकर अवस्थान करती हैं ॥५७॥

श्रीवृन्दावनस्थ मुख्य द्वादशवन में ही वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण के व तदीय प्रियतम अखिल व्रजसुन्दरीगण के सम्पत् रूप शोभास्पद कुञ्ज, कुण्ड, मन्दिरादि विविध कौतुक स्थान विद्यमान हैं, वे सब श्रीलक्ष्मी देवी के हृदय में अत्यन्त लोभ के कारण बनते हैं ॥५८॥

श्रुति प्रसिद्धान्युपकाननानि हरेश्चतुर्विंशतिरस्ति तत्र ।
तत् कोकिला कानननामयत्र सङ्केतितः कोकिलनाद आसीत् ॥

श्रुतौ प्रसिद्धानि हरेश्चतुर्विंशत्युपवनानि सन्ति । द्वात्रिंशदीशेश सुखास्पदानीति पाठे । ईशो महादेवस्तस्य ईश श्रीकृष्णस्तस्य सुख स्थानानि सन्ति । तत् तेषूपवनेषु मध्ये कोकिलावन नामास्ति यत्र कोकिलावने कृष्णस्य सङ्केतितः कोकिलनाद आसीदभूत् संकेतो यथा मयामुक समये कोकिलवत् शब्दं करिष्यामि तदात्वया गन्तव्या इत्यर्थः ॥५६॥

श्रीकृष्ण के चतुर्विंशति २४ उपवन हैं, यह श्रुति में वर्णित है । पाठान्तर में देवदेवेश्वर श्रीकृष्ण के ३२ सुखमय स्थान हैं । वे सब उपवन के मध्य में कोकिलावन नाम से जो एक उपवन है, वहाँ पर श्रीकृष्ण सङ्केत सूचक कोकिल की भाँति शब्द करते हैं । संकेत यह है, कि जब मैं अमुक समय में कोकिल के समान शब्द करूँगा, तब तुम वहाँ के लिए अभिसार करना ॥५६॥

सर्वानन्दथुमूलमेकमतुलं लीलैव तस्या अपि,
रूपं तस्य च धाम तत्र परमं माधुर्य्यमात्रं परम् ।
श्रीवृन्दावनमेव देवत इह श्रीरीति चिन्तामणौ,
तस्योद्देश विशेष लेश कथने सर्गस्तृतीयोत्तमः ॥६०॥

इति श्रीमद् विश्वनाथ चक्रवर्त्ति विरचित-
॥ श्रीव्रजरीति चिन्तामणिः समाप्तः ॥

तस्या श्रीराधायास्तस्य श्रीकृष्णस्य लीलैव रूप धाम च सर्वानन्दथुमूलं एकमतुलं तत्र तेषु लीला रूपधामसु मध्ये श्रीवृन्दावनमेव इह देवते । कीदृशं परमं सर्वोत्तमं माधुर्यमात्रं परमप्राकृतं । तस्य वृन्दावनस्य य उद्देश्य विशेषः अन्वेषणविशेषस्तस्य लेशमनने लेशकथने वा यत्र तस्मिन् रीतिचिन्तामणौ तृतीयः सर्गः ॥६०॥इति ।

॥ तृतीयः सर्गः समाप्तः ॥

श्रीराधाकृष्ण की लीला, रूप, धाम सब ही आनन्द के मूल एवं एकमात्र अतुलनीय हैं । उस लीलारूप धाम के मध्य में इस श्रीवृन्दावन ही परम माधुर्य्य व अप्राकृत है, उस श्रीवृन्दावन के उद्देश विशेष के लेशमात्र भी जिसमें वर्णित है, उस रीतिचिन्तामणि नामक ग्रन्थ का उत्कृष्ट तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ॥६०॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्त्ति विरचित-
॥ श्रीव्रजरीतिचिन्तामणिः समाप्तः ॥

वृन्दारण्यं समाश्रित्य हरिदासेन शास्त्रिणा,
चिन्तामणेर्मुदाव्याख्या कृतेयं विदुषां मुदे ।
चैत्रे मासि सिते पक्षे नवम्यां भृगुवासरे,
चन्द्रग्रहवियद्रामे शाकेऽयं पूर्णतां गतः ॥



श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु

श्रीहरिदासशास्त्री सम्पादिता

ग्रन्थावली

१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्"	८०.००
२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी,	२.००
३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	४.००
४। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति	३.५०
५। श्रीराधाकृष्णार्चन द्वीपिका	२.००
६-७-८। श्रीगोविन्दलीलामृतम्	१०१.५०
९। ऐश्वर्यकादम्बिनी,	५.००
१०। संकल्पकल्पद्रुम	५.००
११। चतुःश्लोकी भाष्यम् १२। श्रीकृष्णभजनामृत	५.००
१३। श्रीप्रेमसम्पुट,	५.००
१४। भगवद्भक्तिसार समुच्चय	५.००
१५। व्रजरीतिचिन्तामणि,	१५.००
१६। श्रीगोविन्दवृन्दावनम्	१.५०
१७। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश,	१०.००
१८। श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र	१.००
१९। हरिभक्तिसारसंग्रह	१५.००
२०। धर्मसंग्रह,	४.००
२१। श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर	४.००
२२। श्रीनामामृतसमुद्र	०.५०
२३। सनत्कुमार संहिता,	२.५०

२४।	श्रुतिस्तुति व्याख्या,	२०.००
२५।	रासप्रबन्ध,	५.००
२६।	दिनचन्द्रिका	२.००
२७।	श्रीसाधनदीपिका,	२०.००
२८।	स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन,	३०.००
२९।	श्रीराधारससुधानिधि(मूल,)	१.००
३०।	,, (सानुवाद)	५४.००
३१।	चैतन्यचन्द्रामृतम्	६.००
३२।	श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः,	६.००
३३।	श्रीब्रह्मसंहिता	२७.००
३४।	भक्तिचन्द्रिका,	१२.००
३५।	प्रमेयरत्नावली एवं नवरत्न	१३.००
३६।	वेदान्तस्यमन्तक	१३.००
३७।	तत्त्वसन्दर्भः,	२०.००
३८।	भगवत्सन्दर्भः	३८.००
३९।	परमात्मसन्दर्भः,	५०.००
४०।	कृष्णसन्दर्भः	८०.००
४१।	भक्तिसन्दर्भः,	८०.००
४२।	प्रीतिसन्दर्भः	७०.००
४३।	दशश्लोकी भाष्यम्	२५.००
४४।	श्रीभक्तिरसामृतशेषः,	५५.००
४५।	श्रीचैतन्यभागवत	१०१.००
४६।	श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्	७५.००
४७।	श्रीचैतन्य मङ्गल	७५.००
४८।	श्रीगौराङ्गविरुदावली	१८.००
४९।	श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृतम्	४८.००
५०।	सत्सङ्गमः	२०.००
५१।	नित्यकृत्यप्रकरणम्	३०.००

५२ ।	श्रीमद्भागवत-प्रथमश्लोक	२५.००
५३ ।	गायत्री व्याख्याविवृतिः	५.००
५४ ।	श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्	१०५.००
५५ ।	श्रीकृष्णजन्मतिथिविधिः	६.५०
५६ ।	श्रीहरिभक्तिविलासः(प्रथमो भागः)	
५७ ।	श्रीहरिभक्तिविलासः(द्वितीयो भागः)	१८०.००
५८ ।	श्रीहरिभक्तिविलासः (श्लोकसूचीः)	
५९ ।	काव्यकौस्तुभः	३०.००
६० ।	श्रीचैतन्यचरितामृत	१०५.००
६१ ।	अलङ्कार-कौस्तुभ	
६२ ।	श्रीगौराङ्ग लीलामृतम्	५.००
६३ ।	शिक्षाष्टकम्	२.००
६४ ।	संक्षेप श्रीहरिनामामृत व्याकरणम्	२२.००

* * *

वङ्गाक्षर में मुद्रित ग्रन्थ

१ ।	श्रीबलभद्र-सहस्रनामस्तोत्रम्	२.००
२ ।	दुर्लभसार	३.५०
३ ।	साधकोल्लासः	१५.००
४ ।	भक्तिचन्द्रिका	१२.००
५ ।	श्रीराधारससुधानिधि (मूल)	२.००
६ ।	,, (सानुवाद)	६.००
७ ।	भगवद्भक्तिसार समुच्चय	५.००
८ ।	भक्तिसर्वस्व	५.००
९ ।	मनःशिक्षा	५.००
१० ।	पदावली	१०.००
११ ।	श्रीसाधनामृतचन्द्रिका	४.५०

* * *

❀ आगामी प्रकाशन ❀

१। बृहद्भागवतामृतम्

२। लघु भागवतामृतम्

३। उज्ज्वलनीलमणि

४। वेदान्तदर्शन (सटीक, सानुवाद)
श्रीबलदेवविद्याभूषणकृत भाष्ययुक्त।

५। श्रीगोपालतापनी उपनिषत्

६। श्रीमद्भागवत (सप्त टीका समन्वित)

७। श्रीगौराङ्ग चम्पू

८। श्रीकृष्णभावनामृत

९। सिद्धान्तरत्न (सटीक)

सद्ग्रन्थ प्रकाशक—
श्रीहरिदासशास्त्री
कालीदह, वृन्दावन–२८११२१



मुद्रक—श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस, कालीदह, वृन्दावन।